प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न

श्रीराधा बाबा

(द्वितीय भाग)

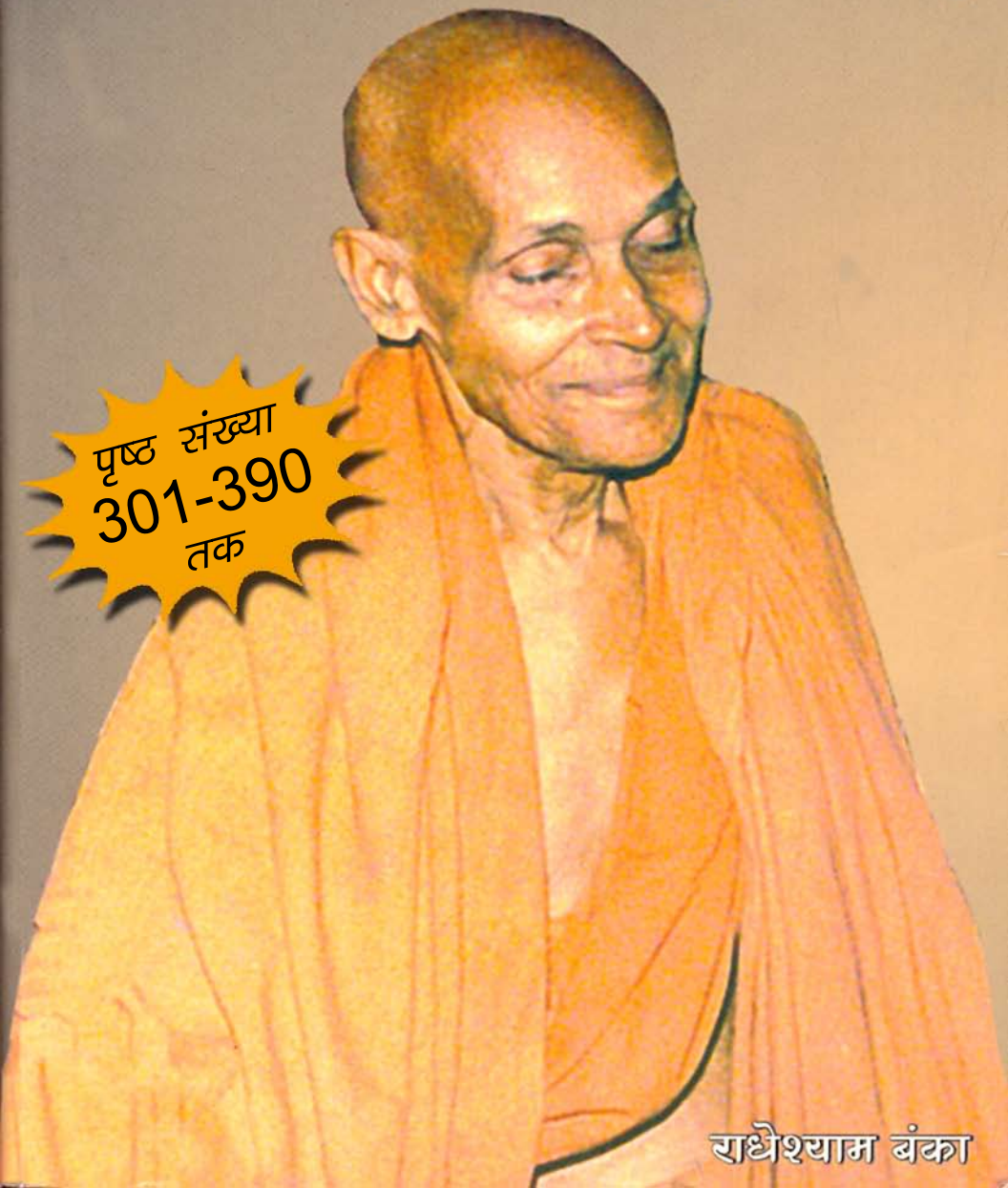

पृष्ठ संख्या
301-390
तक

राधेश्याम बंका

बाहरसे आये हुए भक्तगण अपने विह्वल उद्‌गारोंको व्यक्त करनेमें अघाते नहीं थे। कलकत्तेके एक भक्तने कहा – श्रीडोंगरेजी महाराजकी मैं यह पाँचवीं अथवा छठवीं बार कथा सुन रहा हूँ, पर ऐसा आनन्द तो पहले कभी नहीं आया।

उनके उद्‌गारोंको सुनकर मुझसे कहे बिना नहीं रहा गया। मैं बोल पड़ा – क्या आप यह नहीं जान रहे हैं कि यहाँपर श्रीमहाराजजीके पधारनेकी प्रेरणा क्या है? अन्य स्थानोंपर कथा कहनेके लिये महाराजजीको आमंत्रित करना पड़ता है और यहाँ किसी सदभिलाषाके फलस्वरूप श्रीमहाराजजी स्वयं-प्रेरणासे पधारे हैं। इसके अतिरिक्त आप यह भी तो देखें कि उनके समक्ष श्रोताके रूपमें कौन बैठा है। क्या ये सब तथ्य वक्ताके भाव-राज्यको प्रभावित नहीं करते? गोस्वामी तुलसीदासजीने स्वयं लिखा है –

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास।।

कलकत्तेके जिन सज्जनने ये उद्‌गार व्यक्त किये थे, उन्हींकी तरह अन्य कई लोगोंके मुखसे इसी प्रकारके भाव सुननेको मिले। नासिकसे पधारे हुए एक अन्तरंग भक्त यहाँतक बोल गये – मुझे तो बड़ा विस्मय होता है कि जो व्यक्ति भक्तिमें इतना डूबा हुआ हो, वह कैसे कथा कह पा रहा है? यह हमारा महान सौभाग्य है कि हमलोग ऐसे संतको अपनी आँखोंसे देख रहे हैं। कभी-कभी मुझे अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं होता।

१४ फरवरीके प्रातःकाल माँने अपने निजी परिकर कृष्णजीको पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजके पास भेजा और कहलवाया – श्रीमहाराजजीके दर्शन कथा-मण्डपमें ही केवल हो पाते हैं। कथासे तृप्ति नहीं हो पाती। क्या श्रीमहाराजजी अपनी व्यस्त दिनचर्यामेंसे कुछ क्षण निकालकर मिलनेके लिये अवसर दे सकते हैं? यदि महाराजजी आज्ञा प्रदान करें तो मैं वहाँ निवास कुटीरपर दर्शन करनेके लिये आ जाऊँ।

श्रीडोंगरेजी महाराजने कृष्णजीसे कहा – मैं स्वयं ही माँके पास आऊँगा।

कृष्णजीने निवेदन किया – आपके जानेसे तथा सीढ़ीपर चढ़नेसे आपको श्रम होगा। माँ तो कुर्सीपर बैठकर आती हैं, अतः उनके आनेमें

कोई कठिनाई नहीं होगी।

श्रीडोंगरेजी महाराजने कहा – तब तो वे कभी भी आ सकती हैं और इसके लिये पूछनेकी आवश्यकता ही क्या थी?

इसके बाद बातचीतका क्रम चल पड़ा। कृष्णजीने बाबूजीके बारेमें, गीतावाटिकाके बारेमें तथा नव-निर्मित मन्दिरके बारेमें कुछ बातें बतलायीं। बातचीतके इसी क्रममें कृष्णजीने जिज्ञासा व्यक्त की – आपका बाबासे परिचय कब हुआ?

श्रीडोंगरेजी महाराजने बतलाया – बाबाद्वारा रचित 'श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन' जब पढ़ा, तभीसे बाबाके दर्शनकी अभिलाषा थी। इधर कथा कहनेके निमित्तसे गोरखपुर आनेकी बात चली। बात चलते-चलते एक बार टूट गयी। इससे मन उदास हो गया। हरिकी जैसी इच्छा, ऐसा मानकर मनको समझा लिया, परंतु उसी हरि-इच्छासे कथाका आयोजन निश्चित हो गया। कथाको सुनाकर साधारण स्तरकी एक सेवा ही मेरेद्वारा सम्पन्न हो रही है। श्रीभाईजीके सम्बन्धमें क्या कहूँ? वे तो भगवद्धामसे आये थे और वहीं चले गये। श्रीभाईजीके प्रत्यक्ष दर्शन तो नहीं हुए, परंतु उनके द्वारा लिखित साहित्य पढ़ा है। हिन्दू धर्म एवं हिन्दू जातिके लिये वे जो कर गये हैं, उसके लिये वे सदा ही स्मरण किये जायेंगे।

श्रीडोंगरेजी महाराजके पाससे वापस आकर कृष्णजीने उनकी प्रसन्न अनुमतिकी सूचना माँको दे दी। १६ फरवरीको कथा आरम्भ होनेके पहले प्रातःकाल माँ श्रीडोंगरेजी महाराजके दर्शनार्थ उनके निवास-कुटीरपर पधारीं। श्रीमहाराजजीके समीप स्वतन्त्र आसनपर विराजनेके उपरान्त माँने ज्यों ही प्रणाम किया, त्यों ही श्रीमहाराजजीने भी प्रणाम करके कहा – आप मुझे आशीर्वाद दें कि मुझे प्रभु-चरणोंकी भक्ति मिले।

श्रीडोंगरेजी महाराजके ऐसा कहते ही माँने कहा – आपने तो मेरी बात कह दी। यही प्रार्थना करने तो मैं आयी थी। आप मुझे आशीर्वाद दें कि भगवानकी भक्ति मिले, उनके चरणोंमें प्रीति हो। आपके ठाकुर श्रीबालकृष्णलालजीसे यही प्रार्थना है।

इधर तो माँ इस प्रकारसे कह रही थीं, उधर श्रीमहाराजजी असहमति व्यक्त करते हुए अपना मस्तक हिला रहे थे। माँके कह चुकनेपर श्रीमहाराजजी कहने लगे – आप ही मुझे आशीर्वाद दें। आप तो जगदम्बा

हैं, आपको ही कृपा करनी चाहिये।

उभय पक्षका अपना-अपना दैन्य और फिर परस्परके प्रति प्रार्थना, यह सारा दृश्य और यह सारा संवाद इस लोक-स्तरका था ही नहीं। अद्‌भुत शील, अद्‌भुत संकोच, अद्‌भुत दैन्य, अद्‌भुत मनोरथ, अद्‌भुत विनती आदिकी एक बड़ी अद्‌भुत झाँकी देखनेको मिल रही थी। श्रीडोंगरेजी महाराजके सेव्य भगवान श्रीबालकृष्णलालजीके लिये माँ पोशाक-इत्र-फल-फूल-पुष्पहार आदि अपने साथ ले आयी थीं। वह सब माँने श्रीमहाराजजीको दिया अर्पित करनेके लिये। इन सबको महाराज श्रीडोंगरेजीने अपने समीप रखवा लिया। ठाकुर-सेवाकी सामग्रीको रखकर माँ पुनः हाथ जोड़े-जोड़े मन्द-मन्द स्वरमें निवेदन करने लगीं – आप तो सब प्रकारसे समर्थ हैं। मैं तो अनपढ़ साधारण महिला हूँ। आप अपने बालकृष्णलालसे प्रार्थना करें कि मुझे सच्ची भक्ति मिले।

उस समय कुटीरका वातावरण जैसा भावमय हो रहा था, श्रीडोंगरेजी महाराजकी मुखाकृति जितनी भावमय हो रही थी और माँकी मुख-छवि जितनी भावमय हो रही थी, उस सबका वर्णन भला कौन कर सकता है?

'बरनै छबि अस जग कबि को है'।

कुटीरमें गहरी निश्शब्दता व्याप्त हो रही थी। दोनों ही अपने-अपने भावोंमें निमग्न थे। थोड़ी देर बाद माँने बड़े मन्द स्वरमें रुक-रुककर कहना आरम्भ किया – भागवतकी कथा सुनाकर आपने निहाल कर दिया। बस, इसी प्रकार एक बार और कभी यहाँ पधारकर आप श्रीरामायणजीकी कथा सुना दें।

श्रीडोंगरेजी महाराजने भगवान श्रीबालकृष्णलालकी ओर इंगित करके कहा – यह तो इनकी इच्छापर निर्भर है।

माँ कथाके प्रारम्भ होनेके समय गयी थीं। कथारम्भका समय समीप होनेसे माँने अधिक बैठना उचित नहीं समझा और वे श्रीडोंगरेजी महाराजको प्रणाम करके कथा-मण्डपमें चली आयीं।

देखते-देखते भागवत-कथाके दस दिन व्यतीत हो गये और १७ फरवरीकी मध्याह्न वेलामें भागवत-कथा सम्पन्न हो गयी। इसी दिन अपराह्न कालमें श्रीडोंगरेजी महाराजको वायुयानसे दिल्ली प्रस्थान करना था।

गीतावाटिकासे प्रस्थान करनेके पूर्व श्रीडोंगरेजी महाराज बाबाकी कुटियापर पधारे। श्रीडोंगरेजी महाराजके आते ही बाबाने उनको कम्बलका आसन देना चाहा। श्रीडोंगरेजी महाराजने कहा – कम्बलकी क्या आवश्यकता है? यहाँका प्रत्येक रजकण परम पवित्र है।

श्रीडोंगरेजी महाराज एवं बाबा भूमिपर ही बैठ गये। श्रीमहाराजजीने बाबाको भूमिपर माथा टेककर प्रणाम किया। बाबाने अपने कर-कमलकी भावमयी चेष्टाद्वारा पुष्पार्पण किया और फिर वे कहने लगे – आपने कथा क्या सुनायी, भगवत्कृपा और भगवद्रसकी सरिता ही प्रवाहित कर दी। आप विश्वास करें, मैंने ऐसी कथा कभी नहीं सुनी। जीवनकी साध आपने पूरी कर दी। यहाँपर अच्छे-अच्छे कथावाचकोंका शुभागमन होता ही रहता है, परंतु आपकी कथामें आपका जीवन बोलता है। आपका अभिनन्दन करनेके लिये मेरे पास वाणी नहीं है। आपने अद्भुत-से-अद्भुत कथा सुनायी। आपके द्वारा भगवद्भावका जो उन्मुक्त वितरण हुआ है, यह कार्य सर्वथा अतुलनीय है, पूर्णतः निरुपमेय है। भगवद्भावका यह दान, दान नहीं, महादान है और यह महाद्भुत है।

श्रीडोंगरेजी महाराज तो दैन्यवशात् स्वयंमें सिमटे चले जा रहे थे। इस भावार्चनको सुनकर उन्होंने विनम्र स्वरमें कहा – मैं तो किसी लायक नहीं हूँ। मैं तो आपकी शरणमें हूँ।

बाबाने कहा – आपका दैन्य आपके ही योग्य है, अन्यथा ऐसी योग्यता, ऐसा संतत्व और ऐसी कथाका दर्शन भला कहाँ मिल पाता है? आपके शुभागमनसे गीतावाटिका धन्य हो गयी। इस स्थानकी महिमा बढ़ गयी।

बाबा बार-बार अपने तथा गीतावाटिकाके सौभाग्यका वर्णन करते रहे। हवाई-अड्डेपर जानेका समय देखकर बाबाने पुनः कहा – अब आप सहर्ष पधारें। मैं तो आपके परम मंगलकी सतत कामना करता हूँ।

श्रीडोंगरेजी महाराज आये और चले गये। पलक मारते-मारते दस दिन निकल गये। यह पता ही नहीं चला कि किस प्रकार दस दिन बीत गये। श्रीडोंगरेजी महाराजके आगमनसे यह गीतावाटिका 'भई सकल सोभा कै खानी'। इन दस दिनोंमें गीतावाटिकाका वातावरण कुछ और ही हो गया था। सभीपर एक आध्यात्मिक नशा छाया हुआ था, जिसकी खुमारी

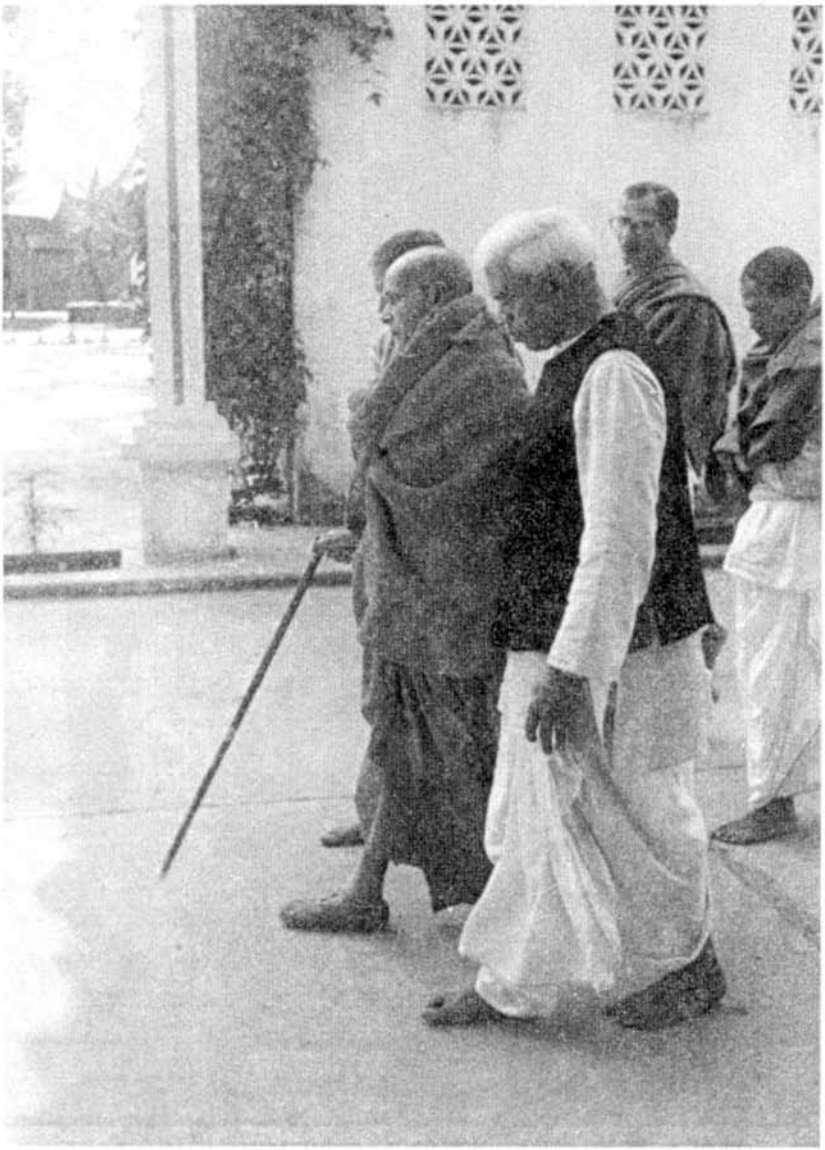

गीतावाटिका में विचरण करते हुए श्रीराधाबाबा

गीतावाटिका में श्रीभागवतजी के आयोजन के अवसर पर
पूज्य बाबा का अभिवादन करते हुए श्री डोंगरेजी महाराज

बहुत दिनोंतक चढ़ी रही। सभी जगते-जगते खुली आँखोंसे एक आध्यात्मिक सपना देख रहे थे। यह महदायोजन सभीके मनपर एक गहरी छाप छोड़ गया है। सभी मुक्त स्वरसे कहते थे – यह महदायोजन गीतावाटिकाकी सुख्यातिके अनुरूप ही हुआ।

* * * * *

भगन्दर रोगसे विमुक्ति

भाई श्रीसीतारामजी जालानको जिन्हें बाबा सदा पुत्रवत् प्यार करते रहे। श्रीसीतारामजीके प्रति बाबाका वात्सल्य सदा उमड़ता ही रहता था। एक बार श्रीसीतारामजी काफी अस्वस्थ हो गये। उनको दमा तो था ही, भगन्दर भी हो गया। भगन्दरको अँगरेजीमें फिस्चुला कहते हैं। यह बड़ा दुष्ट रोग है। चाँदसीके चिकित्सकोंने कहा कि इसके इलाजमें श्रीसीतारामजीको खाटपर लगभग अढ़ाई मास लेटे रहना पड़ेगा। डाक्टरोंकी राय थी कि यह रोग आपरेशन किये बिना ठीक होगा ही नहीं। घरवाले आपरेशन कराना तो चाहते थे, किन्तु दमेका रोग साथमें लगा हुआ था, अतः साहस नहीं हो पा रहा था। भगन्दर रोग भीषण रूपसे बढ़ा हुआ था। मलद्वारसे अधिक रक्त-स्राव होता था। दिन-प्रति-दिन शरीर छीज रहा था।

एक दिन श्रीसीतारामजी अपने परम प्रिय स्वजन श्रीबालाप्रसादजी तुलस्यानके साथ बाबाके पास आये। बात-ही-बातमें श्रीबालाबाबूने श्रीसीतारामजीकी भीषण रुग्णताकी बात चला दी। उस भगन्दर रोगकी भीषणता तो हमारे आपके लिये थी ही, थोड़ी देरके लिये बाबा भी चिन्तित हो उठे और चिन्ताकुल स्वरमें उन्होंने कहा – 'अच्छा त हमार छोटके बेटुआके फिस्चुला हो गइल बा'।

फिर रुककर बाबाने कहा – कोई बात नहीं। चिन्ताका प्रश्न नहीं। पहले मैं अपने डाक्टरोंको दिखवा लूँ। यदि हमारे डाक्टर भी निदान कर लेनेके बाद यही रोग बतलायेंगे तो मैं मान लूँगा। उसके बाद इस रोगकी चिकित्साके बारेमें सोचा जायेगा। पहले यह निर्णय हो कि भगन्दर है या नहीं।

उसी समय उन्होंने डा. श्रीएल. डी. सिंहजीको बुलवाया। जब डाक्टर साहब आ गये, तब बाबाने भाई श्रीसीतारामजीका छोटे पुत्रके रूपमें

परिचय देते हुए उनसे उस रोगका सही निदान करनेके लिये कहा। डाक्टर साहबके कथनानुसार श्रीसीतारामजीको अगले दिन अस्पतालमें आना आवश्यक था। इसे श्रीसीतारामजीने स्वीकार कर लिया। जब श्रीसीतारामजी श्रीबालाबाबूके साथ घर वापस लौट रहे थे तो अत्यन्त विश्वासके स्वरमें उन्होंने श्रीबालाबाबूसे कहा – कल अस्पतालमें जो विभिन्न जाँच और परीक्षण होगें, उनमें यह रोग नहीं मिलेगा। वे सारे परीक्षण सिद्ध कर ही नहीं पायेंगे कि मुझे भगन्दर रोग है।

उनकी बात सुनकर श्रीबालाबाबूको बड़ा विस्मय हो रहा था। उनकी आँखोंमें आश्चर्य भरी जिज्ञासा तैर रही थी। उन्होंने पूछ – यह तुम कैसे कह रहे हो?

श्रीसीतारामजीने कहा – इस प्रश्नका उत्तर सारे टेस्ट (अर्थात् जाँच-पड़ताल) हो जानेके बाद दूँगा।

दूसरे दिन श्रीसीतारामजीके विभिन्न टेस्ट हुए और अपनी रिपोर्टमें डाक्टर साहबने लिख दिया कि भगन्दरके कोई लक्षण नहीं हैं, हाँ बवासीरका आरम्भ है। यह रिपोर्ट बाबाको दिखलायी गयी। रिपोर्ट देखकर बाबाने कहा – तुमने तो मुझको डरा ही दिया था। तुमको भगन्दर है ही नहीं।

श्रीसीतारामजी अपने भावोंकी उर्मिलताके उभारका संवरण नहीं कर पाये और वे भरे-भरे हृदयसे कहने लगे – यह सब आपका खेल है। मैं तो उस खेलको देखकर भी नहीं देख पा रहा हूँ। आप तो भाग्यकी रेखाको बदल देनेमें भी समर्थ हैं।

बाबा प्यारमें न जाने क्या-क्या बोलते रहे और फिर कहा – जाओ। अब लाल मिर्च मत खाना।

इसके बाद श्रीसीतारामजीको कभी भगन्दर हुआ ही नहीं। श्रीबालाबाबूके मनमें जिज्ञासा अभीतक बनी हुई थी। वे भली प्रकार जानते थे कि श्रीसीतारामजी भगन्दरसे खूब पीड़ित हैं और अब यह बात कैसे बदल गयी। श्रीबालाबाबूकी जिज्ञासाका उत्तर देते हुए श्रीसीतारामजीने कहा – बाबाने कहा था कि मेरा डाक्टर निदानके बाद जो कहेगा, उसी बातको मैं मानूँगा। इन शब्दोंके कहते समय उनकी मुख-मुद्रा कुछ और ही प्रकारकी हो गयी थी। उनके मुखमण्डलपर एक अलौकिक स्तरकी कान्ति

झलक रही थी। उससे स्पष्ट लग रहा था कि जिस प्रारब्ध-भोगके फलस्वरूप यह रोग मेरे पास आया है, उस प्रारब्धको ही वे बदल देना चाहते हैं। जिस समय उनके सामने रोगकी बात चली थी, तब पूज्य बाबाको बतला दिया गया था कि सभी डाक्टरोंने एक स्वरसे इसे भगन्दर बतलाया है। सभी डाक्टरोंका अभिमत जाननेके बाद भी उनके द्वारा दृढ़ स्वरमें वैसा कहा जाना ही एक इशारा कर रहा था कि बाबा 'अपने ढंगसे सक्रिय' हो रहे हैं।

श्रीसीतारामजीके उत्तरको सुनकर श्रीबालाबाबूको बड़ा सन्तोष मिला, केवल सन्तोष ही नहीं, संताश्रय-भावनाको बड़ा बल मिला।

* * * * *

मन्दिर में प्राण-प्रतिष्ठा

पूज्य बाबूजीकी महाकार्य-स्थली रही है गीतावाटिका। आध्यात्मिकता और आस्तिकता, धार्मिकता और नैतिकता, वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति, सत्साहित्य और समाज-सेवा आदिके क्षेत्रमें जिस महान कार्यकी संसिद्धिके लिये उनका भूतलपर शुभागमन हुआ था, उस कार्यको उन्होंने सम्पन्न किया गीतावाटिकामें निवास करते हुए ही। उनकी महाकार्य-स्थली बननेका सौभाग्य मिला गीतावाटिकाको ही। इसी गीतावाटिकामें उन्हीं बाबूजीकी स्मृतिमें एक अति विशाल मन्दिरका निर्माण नागर शैलीके अनुसार हुआ है।

इस मन्दिरमें भगवद्विग्रहोंकी प्रतिष्ठा होनेके पूर्व भागवत-कथाका भव्य आयोजन हुआ। भागवत-कथा कहनेके लिये पधारे थे भारतके विख्यात संत पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराज। गीतावाटिकामें ८ फरवरी १९८५ से १७ फरवरी १९८५ तक भागवत-कथा हुई थी। भागवत-कथाका यह विशद आयोजन प्राण-प्रतिष्ठा-समारोहका एक अंग ही था। भागवत-कथाके पूर्ण होते ही भगवद्विग्रहोंकी प्राण-प्रतिष्ठा फरवरी ८५ के अन्तमें होनेवाली थी, किंतु कतिपय बाधाओंके कारण यह कार्यक्रम बाध्य होकर स्थगित करना पड़ा। फिर यह सम्पन्न हो पाया जून मासके तृतीय सप्ताहमें।

प्राण-प्रतिष्ठाका पूजन-विधान १५ जून ८५ से आरम्भ होकर सात दिनतक चलता रहा। इसकी पूर्णाहुति हुई २१ जून ८५ को। पूजन- विधानके विस्तृत कर्म-काण्डको विधिवत् सम्पन्न करनेके लिये विभिन्न स्थानोंसे ग्यारह

निष्णात पण्डित पधारे थे। इनके साथ चार सहायक पण्डित सहयोगीके रूपमें कार्य कर रहे थे। हम सभी लोगोंकी आन्तरिक अभिलाषा थी कि सात दिनतक पूज्या माँके द्वारा सारा पूजन-कार्य हो, परंतु उनका स्वास्थ्य अत्यधिक शिथिल था। चलना-फिरना तो दूरकी बात रही, उनके लिये बैठ सकना भी सम्भव नहीं था। इस परिस्थितिमें पण्डित-मण्डलने एक मध्यम मार्गका आश्रय लिया। पण्डितोंने माँके द्वारा पूजनका संकल्प करवाया और फिर माँके प्रतिनिधिस्वरूप बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) और श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगलाने यजमानके रूपमें सात दिनतक पूजन-कार्य किया। फोगला दम्पतिको प्रतिदिन छः-सात घंटेतक अर्चकके आसनपर बैठना पड़ता था। भले माँ अर्चकके आसनपर नहीं विराजीं, परंतु वे प्रतिदिन पूजनमें अवश्य पधारती थीं। माँके पधारते ही वातावरणमें दिव्यता परिव्याप्त हो जाती थी।

प्राण-प्रतिष्ठा-समारोहके निमित्तसे वृन्दावनसे पूज्य श्रीमहाराजजी भी पधारे थे। महाराजजीके पधारते ही समारोहकी शोभा एवं गरिमा अनन्तगुनी हो गयी। महाराजजीके पधारनेपर बाबाने कहा था – आपका शुभागमन होते ही मेरे आह्लादकी सीमा नहीं रहती। मेरी दृष्टि सदा देखती रहती है आपकी नित्य प्रसन्न मुखाम्बुज-श्रीको।

इस अवसरपर वृन्दावनसे श्रीश्रीराम-श्रीफतेहकृष्णजीकी रासमण्डली एक सप्ताहके लिये गीतावाटिका आयी थी। भागलपुरसे मानस-कथावाचिका आदरणीया बहिन श्रीकृष्णादेवीजी मिश्रका भी शुभागमन हुआ था। रासलीला प्रातःकाल होती थी और मानस-कथा रात्रिमें। प्रातःकाल भगवान श्रीकृष्णकी विभिन्न लीलाओंका भावपूर्ण प्रस्तुतीकरण, पूर्वाह्न कालसे अपराह्न कालतक पूजन-विधानके समय वैदिक मंत्रों तथा पौराणिक स्तुतियोंका सस्वर घोष और रात्रिमें श्रीरामचरितमानसके पुष्पवाटिका- प्रसंगकी मधुमयी कथा, इन सबसे गीतावाटिकाका वातावरण बड़ा सरस बन गया था। इस अवसरपर बाहरसे आनेवालोंकी भीड़ तो नहीं थी, किंतु वे सभी लोग गीतावाटिका आ गये थे, जिनका माँसे, बाबूजीसे तथा बाबासे आन्तरिक लगाव है।

इस प्राण-प्रतिष्ठा-समारोहकी सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बाबा लगभग सभी कार्यक्रमोंमें उपस्थित रहे। उनकी उपस्थितिसे कार्यक्रमका स्वरूप और प्रभाव कुछ और ही हो जाया करता था। कार्यक्रम ऐसे आकर्षक बन जाते थे कि उठनेवालोंको उठनेकी स्मृति नहीं रहती थी। प्रातःकाल

श्रीनिमाई -निताई के मध्य श्रीराधाबाबा (पार्श्व में श्रीराधाकृष्ण के श्रीविग्रह)

मंदिर में श्रीराधाबाबा
साथ में (बाएं से दाएं) डॉ. एल.डी. सिंह, श्रीचोपड़ाजी, श्रीबंकाजी तथा

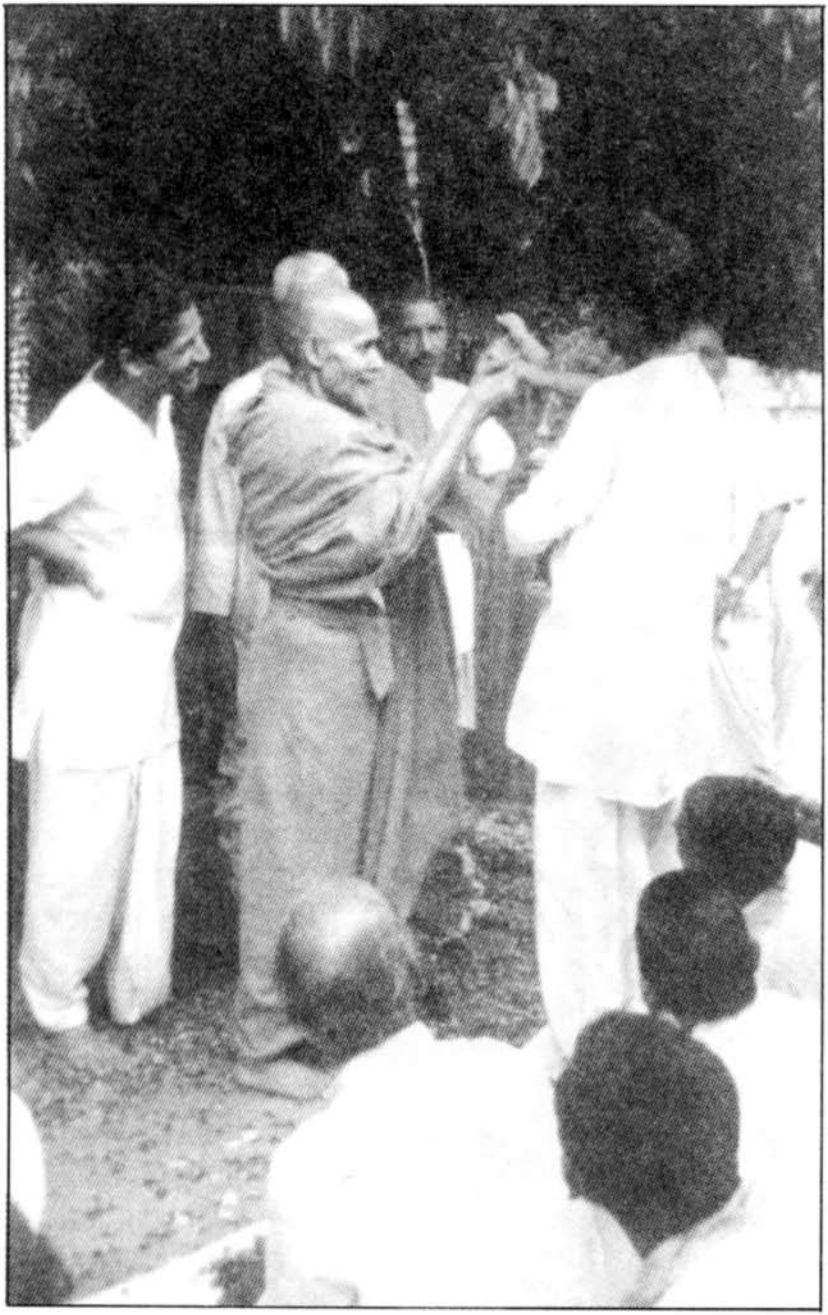

श्रीगिरीराज-परिक्रमा स्थली में श्रीराधाबाबा

रासलीलाका दर्शन करनेके लिये एवं रात्रिमें मानस-कथाका श्रवण करनेके लिये बाबा जाते ही थे, इसके अतिरिक्त दिनमें पूजनके समय भी बाबा आवश्यकतानुसार मन्दिरमें पधारते थे। इस बार सबसे नवीन बात यह हुई कि बाबाने पण्डितोंसे तिलक करवाया और उनसे आशीर्वाद-फल स्वीकार किया। मन्दिरके ऊपर ध्वजाको चढ़ाते समय, शोभा-यात्राके समय, यज्ञमें पूर्णाहुति देते समय, भगवद्विग्रहोंके नीराजनके समय, इस प्रकार भिन्न-भिन्न मुख्य अवसरोंपर बाबा मन्दिरमें उपस्थित रहे। बाबा और महाराजजीकी उपस्थितिसे लोगोंके हृदयका उत्साह और उल्लास हिलोरें लेने लगता था। शोभा-यात्राके समय जब सभी लोग बाबा और महाराजजीके साथ-साथ मन्दिरकी परिक्रमा दे रहे थे, तब ऐसा लगता था कि मानो 'जाहिं सनेह सुरा सब छाके'।

यह उत्साह और उल्लास तो भक्तोंके हृदय-राज्यकी दृष्टिसे है। इससे अलग एक विशेष दृष्टिकोण और भी है। चाहे कितनी सतर्कता और सावधानी रखी जाये, इसके बाद भी विस्तृत पूजन-विधानमें अनजाने-अनचाहे कुछ-न-कुछ च्युतियाँ हो ही जाया करती हैं। हमलोगोंका विश्वास है कि माँ, बाबा और महाराजजीकी उपस्थितिसे प्राण-प्रतिष्ठा-अनुष्ठानकी इन सभी छोटी-बड़ी च्युतियोंका, सभी प्रकारकी न्यूनताओंका और तीनों प्रकारके दोषोंका स्वतः ही परिहार हो गया। इतना ही नहीं, इन संत-चरणोंकी उपस्थितिने प्राण-प्रतिष्ठा-अनुष्ठानको वास्तविक पूर्णता प्रदान की है। इनकी अवस्थितिने गीतावाटिकाको तीर्थत्व प्रदान किया है और प्रदान किया है इनके दर्शकत्वने श्रीविग्रहोंको वस्तुतः दिव्यत्व और देवत्व। अनेक बार संतोंके श्रीमुखसे सुना है कि भक्तके रागभरे हृदयकी सबलता और भावभरी दृष्टिकी प्रबलतासे श्रीविग्रह जाग्रत हो उठते हैं और ऐसे ही समर्थ भक्तके द्वारा भगवानकी भगवत्ता-सत्ता-महत्ताका उद्घाटन एवं विख्यापन होता है। इस अवसरपर जगन्नाथपुरीके कलिपावनावतार श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी, श्रीविल्लीपुत्तूरकी मधुरभावापन्ना श्रीगोदाम्बाजी, चित्तौड़की भक्तिमती श्रीमीराबाई, वृन्दावनके रसिकशेखर स्वामी श्रीहरिदासजी, कलकत्ता-दक्षिणेश्वरके परमहंस श्रीरामकृष्णजी आदि अनेक संतोंके प्रभावपूर्ण व्यक्तित्वकी स्मृति रह-रह करके उभर रही है, जिनकी अति-सबल, अति-प्रबल भक्ति-भावनाके फलस्वरूप अनेक लोकोत्तर प्रसंग सेव्य श्रीविग्रहोंके साथ जुड़ गये हैं। इसीके साथ रह-रह करके यह भी भाव मेरे मनमें उभर रहा है, मेरी इस धृष्ट मुखरताको आप सभी क्षमा प्रदान करें, मुझे

ऐसा लगता है कि उन पुरातन संतोंसे सम्बन्धित जो ऐतिहासिक लोकोत्तर प्रसंग है, उन प्रसंगोंमें परिव्याप्त मार्मिक सत्यकी पुनः आवृत्ति अब गीतावाटिकाके इस मन्दिरमें भी हो रही है।

२१ जूनको प्राण-प्रतिष्ठा-अनुष्ठानका अन्तिम अंग था भगवद्विग्रहोंका नीराजन। यह नीराजन सम्पन्न हुआ माँके कर-कमलोंसे। नीराजनके उपरान्त स्तुति-गायनके समयकी बात है। मन्दिरके मध्य गर्भ-गृहमें प्रतिष्ठित प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवके श्रीविग्रहको बाबा लगभग २०-२५ मिनटतक निरन्तर देखते रहे। ऐसा नहीं कह करके, यह कहना चाहिये कि निरन्तर निहारते रहे। पलकके झपनेपर उस दिव्य छविसे अभिभूत बाबा कहने लगे — ठाकुरजी, ठाकुरजी हो गये। ये विग्रह यथार्थतः भगवद्विग्रह हैं। लावण्य-सौन्दर्य-माधुर्यसे भरपूर यह निराली छवि कितनी मनोहारिणी है!

'दाहिन दइउ होइ जब सबहीं', तभी इस प्रकारके और इस स्तरके दिव्य दृश्यको देखनेका और भावमय वचनको सुननेका सौभाग्य मिला करता है। अन्तरकी विभोरतासे बाबाका श्रीमुख भावित था। फिर हमलोगोंके अनुरोधपर बाबाने गर्भ-गृहमें प्रवेश किया और श्रीप्रिया-प्रियतमकी परिक्रमा लगाकर उनके श्रीचरणोंमें पुष्पार्चन किया एवं इत्र लगाया। बाबाके साथ महाराजजी भी थे। उन्होंने भी पुष्पार्चन किया। तदुपरान्त भगवान श्रीराम-चतुष्टय एवं भगवान श्रीपार्वती-शंकरके श्रीचरणोंका दर्शन किया। श्रीयुगल सरकारका नीराजन करके माँ गर्भ-गृहके प्रवेश-द्वारपर ही विराजी हुई थीं। अधिक देरतक खड़े रह सकना उनके लिये सम्भव नहीं था। सर्वान्तमें स्तुति एवं पुष्पाञ्जलि हो चुकनेपर मन्दिरके बाहरी द्वारपर प्रसादका वितरण होने लग गया और माँ, बाबा एवं महाराजजी विश्राम हेतु चले गये।

इस मन्दिरमें जिन भगवद्विग्रहोंकी प्राण-प्रतिष्ठा हुई है, उनकी नामावली इस प्रकार है। (१) श्रीसिद्धिदाता गणेशजी, (२) श्रीराधा-माधव (३) श्रीराम-चतुष्टय (४) श्रीपार्वती-शंकर, (५) श्रीलक्ष्मी-नारायण, (६) महाशक्ति श्रीदुर्गा, (७) भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी, (८) भगवान श्रीसूर्यदेव और (९) संकटमोचन श्रीहनुमानजी। इनकी प्रतिष्ठा बाबूजी, माँ और बाबाकी भक्ति-भावनाके अनुरूप ही हुई है।

मन्दिरमें भगवान पार्वती-शंकरका भगवद्विग्रह प्रतिष्ठित है। भगवती पार्वतीजीने अपने वाम हस्तमें कमण्डलु धारण कर रखा है। इस कमण्डलुको देखकर बाबाके जीवनके एक प्रसंगकी स्मृति हो आती है। मैं निश्चयात्मक

रूपसे नहीं कह सकता कि यह प्रसंग किस वर्षका है।

एक बार बाबाने बतलाया था कि वाराणसीकी भूमिपर पैर रखते ही उनकी भावनाओंके स्वरूपमें विचित्र परिवर्तन तत्काल आ जाया करता था। बाबा बाहरसे दिखलायी देते थे संन्यासी-वेष-धारी पुरुष, परंतु हृदयकी भावनाके अनुसार उनका भीतरी स्वरूप सर्वथा विभिन्न होता। बाबाकी भावना यही होती थी – भगवती अन्नपूर्णा मेरी माँ हैं, भगवान विश्वनाथ मेरे पिता हैं और मैं उनकी लाडली पुत्री हूँ।

बाबाने यह भी बतलाया था कि जब-जब वे भगवान विश्वनाथके दर्शनार्थ मन्दिरमें गये हैं, तब-तब किसी विचित्र ईश्वरीय विधानसे ऐसा संयोग घटित हो जाया करता था कि कोई-न-कोई भगवान विश्वनाथका विधिवत् पूजन कर रहा है। उधर सविधि पूजन होता रहता और इधर एक कोनेमें किनारे खड़े रहकर बाबा अपनी भावमयी मानसिक अर्चना करते रहते। एक बारकी बात है। सुपुत्री-भाव-भावित बाबाने अपने पितृस्वरूप भगवान विश्वनाथको उपालम्भ देना आरम्भ कर दिया – हे पितृवर! मैं आपके यहाँ न जाने कितनी बार आयी, पर कभी भी आपने मेरा स्वागत, मेरा सम्मान नहीं किया। यदि ऐसी ही उपेक्षा आपकी ओरसे होती रही तो मैं कैसे समझूँ कि मैं अपने पिताके घर आयी हूँ।

इसी प्रकारके भाव बाबा एक किनारे खड़े-खड़े चुपचाप कहते रहे, पर कोई प्रत्यक्ष प्रतिफल सामने नहीं आया। भगवान विश्वनाथका दर्शन करके बाबा भगवती अन्नपूर्णाजीके मन्दिरमें दर्शनार्थ चले गये। माँ अन्नपूर्णासे भी बाबाने उसी रीतिसे सुपुत्री-भाव-भावित होकर उपालम्भ देना आरम्भ कर दिया – माँ! तुम तो कोमल हृदया हो। तेरा हृदय तो वात्सल्यसे परिपूर्ण है। पिताजीने मेरी बात अनसुनी कर दी, पर तुम तो अपनी पुत्रीकी बात सुन लो। मैं कैसे समझूँ कि मैं वस्तुतः अपनी माँके घरपर आयी हूँ। पिताजीने मेरा कोई स्वागत-सत्कार नहीं किया, पर क्या इसी प्रकारसे खिन्न मन होकर मैं तेरे द्वारसे भी चली जाऊँ?

भगवती अन्नपूर्णाके मन्दिरमें भी कोई प्रतिफल दृष्टिगत नहीं हुआ। अन्नपूर्णाजीके मन्दिरसे एकदम सटा हुआ एक मन्दिर है, जिसके कई कक्षोंमें अलग-अलग कई भगवद्विग्रह विराजमान हैं। पहले उस मन्दिरमें जानेका मार्ग अन्नपूर्णाजीके मन्दिरमेंसे ही था, अब इस मार्गका कपाट बन्द कर दिया गया है। बाबा दर्शन तो कर रहे थे, पर मनमें उथल-पुथल भी थी। वे

मन-ही-मन ऐसा सोच रहे थे – क्या मेरी निष्ठामें कोई न्यूनता है अथवा मेरे भावमें कोई च्युति है, जो माँ अन्नपूर्णाके द्वारपर भी मेरी भावनाका समादर नहीं हुआ?

बाबाके मनमें कुछ खिन्नता थी। मनमें खिन्नता लिये हुए बाबाने उस मन्दिरमें प्रवेश किया, जो भगवती श्रीअन्नपूर्णाजीके मन्दिरसे सटा हुआ है। उस मन्दिरमें वे खिन्न मनसे एक भगवद्विग्रहके दर्शनोपरान्त दूसरेका दर्शन करते हुए क्रमशः आगे बढ़ते जा रहे थे कि तभी उनके सामने एक महिला आयी। महिलाके मुख-मण्डलपर अत्यन्त तेज था। उनके काले-काले लम्बे-लम्बे केशोंकी राशि घुटनोंका स्पर्श कर रही थी और उनके हाथमें कमण्डलु था। उनके सामने आते ही बाबा एक किनारे हो गये, क्यों कि यदि नारी-स्पर्श हो जाता तो बाबाको एक दिनका उपवास करना पड़ता। किनारे होकर बाबाने ज्यों ही आगे बढ़नेका प्रयास किया, त्यों ही वे फिर समक्ष आ गयीं। बाबा जिस ओर हटते, उसी ओर वे बाबाके सामने आ जातीं। बाबाने दो-तीन बार बचावके लिये प्रयत्न किया। बचावका प्रयत्न करनेके बाद भी जब उनके द्वारा बार-बार सामने आनेकी चेष्टा होती रही तो बाबाकी आँखोंमें रोषकी रेखाएँ उभर आयीं। कुछ-कुछ तर्जनाके स्वरमें बाबा उनसे बोले – माताजी! आप यह क्या कर रही हैं? क्या आपके द्वारा ऐसी चेष्टा उचित है? आप ही सोचें, एक संन्यासीको यति-धर्मकी रक्षामें सहयोग देना चाहिये या बाधा पहुँचानी चाहिये? संन्यासीके लिये नारी-स्पर्श वर्जित है, यदि स्पर्श हो गया तो उपवास करना पड़ता है। क्या आप यही चाहती हैं कि मैं उपवास करूँ?

बाबा रोषभरी दृष्टिसे उन महिलाकी ओर देखने लगे, परंतु उन महिलाके नेत्रोंमें बड़ी शान्ति थी और उनके अधरोंपर बड़ी निर्मल मुस्कान थी। बाबा एकटक उनकी ओर देखने लगे। वे पूर्ववत् सामने स्थित थीं। रहस्य कुछ भी समझमें नहीं आ रहा था। उनके मुख-मण्डलसे तेजस्विता प्रस्फुटित हो रही थी। बाबा उनके अरुण अधरोंपर फैली हुई उस विचित्र मधुर मुस्कानको, अति निर्मल मुस्कानको निहार रहे थे। निहारते-निहारते लगभग एक-दो मिनट बीते होंगे कि वे सहसा तिरोहित हो गयीं। उनके तिरोहित होते ही बाबाके ध्यानमें आया कि ये तो भगवती ब्रह्मचारिणीजी थीं, जो अपनी लाड़ली पुत्रीपर वात्सल्यकी वर्षा करने आयी थीं। उसी क्षण बाबाके नेत्रोंसे अश्रुका प्रवाह झर-झर बह चला। बाबाका हृदय रह-रह करके कह रहा

था – माँ! तुम माँ हो। तुम परम वत्सला हो। अत्यन्त कोमल हृदया हो। तुम्हें नमन, शत-शत नमन, बार-बार नमन!

अपने कपोलोंको आँसुओंसे भिगोते हुए बाबा वहीं बैठ गये और जहाँ भगवती ब्रह्मचारिणीजी खड़ी थीं, उस स्थानकी धूलिको बार-बार लेकर अपने मस्तकपर लगाने लगे।

वाराणसीमें जब भगवती ब्रह्मचारिणीजीने बाबाको दर्शन दिया था, तब उनके हाथमें कमण्डलु था। अब गीतावाटिकाके इस मन्दिरमें भगवती पार्वतीजीने अपने हाथमें जो कमण्डलु धारण कर रखा है, यह दिव्य छवि वाराणसीके उस दिव्य प्रसंगकी स्मृति दिला रही है।

यहींपर इसीसे सम्बन्धित एक विशेष तथ्यकी ओर संकेत करना आवश्यक लग रहा है। भगवद्विग्रहोंके निर्माणकर्ता मूर्तिकारको यह निर्देश दिया ही नहीं गया था कि भगवती पार्वतीके कर-पल्लवमें कमण्डलु भी होगा। उसने सहज भावसे कर-पल्लवमें कमण्डलुका निर्माण कर दिया। वह मूर्तिकार कमण्डलुके स्थानपर वाम करमें कमलकी अथवा किसी आयुधकी रचना कर सकता था, किंतु वही हुआ जो होना चाहिये था। उस मूर्तिकारने किसी अज्ञात प्रेरणासे बाबा-बाबूजीकी महाकार्य-स्थली गीतावाटिकाके लिये निर्मित होनेवाले देवी-विग्रहके कर-पल्लवमें कमण्डलुकी रचना कर दी। साधारणतः लोग यही कहेंगे कि यह तो मात्र संयोग था, परंतु अपनी आस्था तो ऐसी है कि अन्तर्जगतके सूक्ष्म और समर्थ भाव-तन्तु इस सारे निर्माण-कार्यको प्रभावित और नियन्त्रित कर रहे थे, तभी तो भगवती पार्वतीके श्रीविग्रहकी रचनामें उस प्रकारकी आकृतिका निर्माण स्वतः ही हो गया, जिसका सम्बन्ध बाबाके जीवनमें घटित प्रसंगसे है।

मन्दिरमें भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीजीका श्रीविग्रह प्रतिष्ठित है। ये प्रेमकी अधिष्ठातृ देवी हैं और इन्हें भगवती ललिताम्बा भी कहते हैं। इनकी प्रतिष्ठाके पीछे भी बाबाके जीवनका विस्तृत प्रसंग है। संक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि भगवान श्रीकृष्णके आदेशके अनुसार बाबाने इनकी दीर्घ-काल-व्यापी अर्चनाकी थी। अर्चनाकी अवधिके पूर्ण होनेके बहुत पूर्व ही माँ ललिताम्बाने प्रसन्न होकर बाबाको अपना पावन दर्शन सन् १९५१ की अक्षय तृतीयाके दिन प्रदान किया था। अद्वैत तत्त्वके मूर्तिमानस्वरूप परमाचार्य पूज्यपाद श्रीआदि-शंकराचार्यजीने भी भगवती ललिताम्बाकी अर्चना की थी और जो सिद्धि उन्हें तब मिली, वही अब मिली बाबाको।

बाबाने तो ब्रह्मवैवर्त-पुराणोक्त विधिके अनुसार भगवान श्रीगणेशजीकी अर्चना की थी और अपने अनुभवके आधारपर बाबा कहा करते थे कि ब्रह्मवैवर्त-पुराणमें श्रीगणेश-अर्चनाकी जो फल-श्रुति वर्णित है, वह सर्वथा सत्य है। बाबा तो बचपनसे ही भगवान शंकरके कृपा-पात्र रहे हैं और उनकी कृपाके अनेक चमत्कार बाबाके जीवनमें घटित हुए हैं। बाबूजीके समान ही बाबा भी पञ्चदेवोपासक थे। यही कारण है कि बाबूजीकी समाधिपर जो शिखर बना है, उसपर पञ्चदेवोंके प्रतीकोंकी प्रतिष्ठा बाबाने करवायी है और प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधव तो बाबाके उज्ज्वलात्युज्ज्वल महाभावमय महारसमय जीवनके महाधार हैं ही।

मन्दिरमें जिन-जिन भगवद्विग्रहोंकी प्रतिष्ठा हुई है, उस प्रतिष्ठामें माँ, बाबूजी और बाबाकी, इन तीनों विभूतियोंकी साधना-सिद्धि- सिद्धान्तकी ही अभिव्यक्ति हुई है। यह प्रतिष्ठा इन तीनों विभूतियोंकी परमान्तरिक मान्यताओं और परमैकान्तिक उपलब्धियोंका व्यक्त रूप है। गीतावाटिकाकी महान विभूतियोंके भक्तिपूर्ण विचार और भावमय जीवनका मूर्त रूप है गीतावाटिकाका यह विशाल मन्दिर।

२१ जूनको प्राण-प्रतिष्ठाका पूजन-विधान बड़े प्रसन्न वातावरणमें सम्पन्न हो गया। २२ जूनकी रात्रिमें भगवद्विग्रहोंके समक्ष श्रीहरिनाम-संकीर्तन हुआ। इसका नेतृत्व कर रहे थे महाराजजी। माँ और बाबा भी इस संकीर्तनमें उपस्थित थे। नगरके लोग भी आ गये थे। रासमण्डलीके व्रजवासीगण थे ही। भक्तोंसे मन्दिरका प्रांगण लगभग भरा हुआ था। हरिनामके तुमुल संकीर्तनसे मन्दिरका वायुमण्डल गुंजायमान हो रहा था। बाबूजी कहा करते थे कि किसी भी अनुष्ठानके अन्तमें श्रीहरिनाम- संकीर्तन अवश्य करना चाहिये। भगवन्नाम-संकीर्तन सारे दोषोंका परिहार करके शुभकी प्रतिष्ठा तथा मंगलका विस्तार करता है। बाबूजीका वह कथन ही इस संकीर्तनके आयोजनका प्रेरक था।

* * * * *

बाबा-सन्निधि में भोजन

सन् १९८५ के वर्ष श्रीराधाष्टमी २२ सितम्बरको थी। १९ सितम्बरको पूज्य श्रीमहाराजजी मनकापुर नामक स्थानसे मोटरकार द्वारा मध्याह्नके समय चलनेवाले थे और कार्यक्रमके अनुसार उनकी कारको गीतावाटिका अपराह्न कालमें पहुँच जाना चाहिये था, परंतु कुछ कारणोंसे उन्हें मनकापुरसे चलनेमें विलम्ब हो गया। जब महाराजजीकी कार गीतावाटिका पहुँची, उस समय सूर्यास्त हो रहा था और बाबा भिक्षाके आसनपर बैठ चुके थे। महाराजजी जान-बूझकर बाबाके पास नहीं गये। यदि जाते तो बाबा भिक्षाके आसनसे उठ जाते और फिर बाबाके लिये आंशिक उपवास हो ही जाता। अतः महाराजजी सीधे अपने निवास-कुटीरपर चले गये।

जब भिक्षा समाप्त होनेवाली थी, उसी समय ठाकुरजी बाबाके पास पहुँच गये। ठाकुरजीको देखते ही बाबाने पूछा – महाराजजी कहाँ हैं?

ठाकुरजीने कहा – बाबा! कारसे लम्बी यात्रा करके आये हैं, अतः विश्राम कर रहे हैं।

इस उत्तरसे बाबाको बड़ा सन्तोष हुआ। भिक्षा कर चुकनेके बाद जब बाबाने जलसे हाथ धो लिया, तब बाबाने ठाकुरजीसे कहा – ठाकुर! तुम मेरे साथ चलो। महाराजजी यहाँ न आयें। मैं ही उनके निवास-कुटीरपर मिलनेके लिये चलूँगा।

ठाकुरजीने कहा – बाबा! रात्रिका समय है। इस समय आप कहाँ जायेंगे? आपको चलनेमें कष्ट भी होता है। महाराजजीको यहाँ आनेमें कोई परेशानी नहीं होगी।

बाबाने कहा – ठाकुर! आज तुमको मेरी बात माननी पड़ेगी। महाराजजीको यहाँ बुलाना नहीं है। मैं ही उनके पास चलूँगा।

इस प्रकार बाबा बात कर ही रहे थे कि महाराजजी बाबाके पास पहुँच गये। महाराजजीको देखकर बाबाने कहा – आज आपकी जीत हो गयी और मैं हार गया, पर कोई बात नहीं। मैं आपको निवास-कुटीरतक

तो पहुँचानेके लिये चल ही सकता हूँ।

लोगोंने बाबाको रोकना चाहा, पर बाबाको स्वीकार्य ही नहीं हो रहा था। ठाकुरजीने बाबासे कहा – बाबा! अभी महाराजजीको शौच-स्नानादिसे निवृत्त होना है। आप जायेंगे तो और विलम्ब होगा। आप यहीं विश्राम करें।

बाबाने ठाकुरजीकी बात मान ली। महाराजजी बाबाके पाससे अपने निवास-कुटीरपर चले आये। विविध कार्योंसे निवृत्त होनेमें महाराजजीको कुछ समय लग गया। अब महाराजजी भोजन करनेके लिये बैठनेवाले ही थे, तभी बाबा अपने एक-दो परिकरोंके हाथका सहारा लिये-लिये अँधेरेमें धीरे-धीरे चलते हुए महाराजजीके निवास-कुटीरपर चले आये। सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ। बाबाके अकृत्रिम स्नेहको देखकर महाराजजीकी आँखें बार-बार सजल हो रही थीं।

बाबाने ठाकुरजीसे पूछा – क्यों ठाकुर! महाराजजीने भोजन कर लिया क्या?

ठाकुरजीने कहा – बाबा! अब करनेवाले हैं।

बाबाने कहा – यदि महाराजजीका नियम सर्वथा एकान्तमें भोजन करनेका हो, तब तो मुझे कुछ कहना नहीं है और यदि ऐसा नियम नहीं हो तो मेरे सामने भोजन करनेमें उन्हें कोई आपत्ति होगी क्या?

ठाकुरजीने कहा – आपत्ति क्या होगी? यह तो और भी सुन्दर बात होगी, पर एक बात है। महाराजजीको बड़ा संकोच होगा।

बाबाने कहा – जबतक महाराजजी भोजन करेंगे, मैं एक शब्द भी नहीं बोलूँगा। बस, मौन बैठा रहूँगा और चुपचाप बैठा हुआ देखता रहूँगा।

महाराजजीने बाबाकी उपस्थितिमें भोजन किया। बाबाकी उपस्थितिसे महाराजजीको संकोच तो बहुत हो रहा था, पर इसीके साथ-साथ उनके सांनिध्यका सुख भी मिल रहा था। बाबाकी उपस्थितिके सम्बन्धमें अपना अनुभव बादमें बताते हुए महाराजजीने कहा था कि ऐसा निरन्तर भान हो रहा था मानो अनन्त माताओंका वात्सल्य बाबाके नेत्रोंसे निर्झरित हो रहा हो। जबतक महाराजजी भोजन करते रहे, तबतक बाबा चुपचाप बैठे रहे। चुपचाप बैठे रहनेके बाद भी बाबा बार-बार

नेहभरी दृष्टिसे देखते रहते थे कि थालमें सामग्रियाँ भली प्रकारसे परोसी जा रही हैं अथवा नहीं। महाराजजीके भोजन कर लेनेके उपरान्त बाबाने कहा – ठाकुर! आज महाराजजीको भोजन करते देखकर मुझे जो सुख मिला, उसे बतला सकना मेरे लिये कठिन है। आज पहली बार मैंने महाराजजीको भोजन करते हुए देखा है। आज मेरे आनन्दकी सीमा नहीं।

ठाकुरजीने कहा – बाबा! महाराजजी आपके साथ दो-तीन बार भोजन कर चुके हैं। उस समय बाई परोस रही थी और आप दोनों साथ-साथ प्रसाद पा रहे थे।

बाबाने कहा – ठाकुर! तुम सर्वथा सत्य कह रहे होगे, पर मुझे तनिक भी स्मरण नहीं है। मुझे तो यही लग रहा है कि मैंने आज पहली बार महाराजजीको भोजन करते हुए देखा है। थोड़ी देर रुक करके बाबाने महाराजजीसे कहा – प्रीतिके राज्यमें इस विस्मृतिका भी एक स्वारस्य है। इस स्वारस्यके महत्त्वको केवल आप समझ सकते हैं। विस्मृतिके कारण प्रेमास्पदकी प्रत्येक दिवसकी प्रत्येक उक्ति और प्रत्येक चेष्टा पूर्णतः नवीन और पूर्णतः प्रथम प्रतीत होती है। इस सच्ची प्रतीतिके फलस्वरूप ही प्रत्येक दिवस नित्य नवीन सुखका विधायक बन जाता है।

बाबाके उद्‌गारोंको सुनकर महाराजजी अत्यन्त विभोर हो रहे थे। महाराजजीके विश्रामका समय जानकर बाबा अपनी कुटियापर चले आये।

* * * * *

आस्तिक भावका प्रभाव

आदरणीया बहिन श्रीचन्दाबाई ढाढनियाने भागलपुरसे पूज्य बाबाके पास भेंट स्वरूप कुछ चीजें भेजी और एक पत्र दिया। वस्तुओंको प्राप्त करके और पत्रको सुन करके बाबाने जो उत्तर लिखवाया, वह नीचे दिया जा रहा है। उत्तर स्वरूप भेजे गये पत्रकी पंक्तियोंको पढ़कर मनमें आस्था जमती है कि जीवनमें आस्तिक भाव होनेसे सब कुछ सम्भव है। यह पत्र १३ अप्रैल १९८७ को भेजा गया था।

।। श्रीहरिः ।।

आदरणीया चन्दा बहिन,

तुम्हारा भेजा हुआ सामान चिउड़ा, फल, इलायची, फूल माला और तुम्हारा पत्र प्राप्त हो गया है, पर तुम्हारे स्वास्थ्यका समाचार सुनकर मनमें चिन्ता हो गयी। कई सौ मील दूर तुमको क्या भेज सकता हूँ? सोचनेपर मनमें यही स्फुरणा जागृत हुई कि मन-ही-मन तुम्हारा चिन्तन करके भगवानके चरणोंमें निवेदन कर दूँ कि प्रभु, चन्दा मेरी धर्मकी बहिन है, उसके कष्टके रूपमें आप ही उसकी परीक्षा ले रहे हैं, लेकिन मन घबड़ा उठना स्वाभाविक है। इसलिये मैंने यही उचित समझा कि सबसे अच्छा है भगवानके चरणोंमें तुम्हें समर्पित करके मैं उन्हींको कह दूँ कि हे प्रभो, हमारी धर्मकी चन्दा बहिनको सर्वथा सर्वांशमें निश्चिन्त बना दें। सबसे बढ़िया उपाय मेरे पास यही था। उसीका आश्रय लेकर सुन्दर-से-सुन्दर जो उपाय था, वही मैं कर गया हूँ। मन इतना शान्त हो गया है कि पत्र लिखाते समय भी याद नहीं रहता कि क्या बोल गया हूँ, क्या लिखा गया हूँ। यद्यपि मुझे किसी प्रकारका दुख नहीं है, किंतु मन सर्वथा शान्त हो जानेके कारण ऊहापोहकी गन्ध भी नहीं रह गयी है। पत्रके माध्यमसे बहिन! यही कहना है कि अनुकूल परिस्थितिका अनुभव होनेपर तो सभी आनन्दसे भर जाते हैं, पर हमारे ही कर्मफलके रूपमें जब कोई दुःख आकर पीड़ित करने लगता है, तब हाय-तौबा मचाने लगते हैं। ऐसा न होकर यदि हम भगवानके चरणोंमें कह बैठते कि हे प्रभो! आपकी मंगलमयी इच्छा पूर्ण हो तो उस समय ठीक-ठीक अनुभव भगवानकी कृपा करा देती कि भगवान जो करते हैं, मंगल ही करते हैं।

एक बारकी बात है। प्रयागके संगमपर मैं स्नान कर रहा था। अचानक धाराने मुझे गहरे पानीमें खींच लिया। मैं तैरनेमें बड़ा सुपटु हूँ, अतएव धारापर ही तैरने लगा, किन्तु धारा इतनी तेज थी कि हमें निकलने नहीं दे रही थी। लगभग आधा घंटा प्रयास करनेपर भी और अपनी सारी शक्ति लगा देनेपर भी धारासे छूट न सका। उस समय मनमें यह बात आयी कि सम्भवतः मेरे महाप्रयाणका समय हो रहा है। ऐसा विचार आते ही मैंने अपनेको धारापर छोड़ दिया, दोनों हाथ पैर

फैलाकर जैसे बिस्तरपर लेटते हैं, लेट गया और मन-ही-मन कह उठा कि हे प्राण बन्धो! आपकी मंगलमयी इच्छा पूर्ण हो। यह विचार आते ही जैसे कोई अपने दोनों हाथोंपर मुझे उठा ले, ऐसा अनुभव होकर लगभग बीस गज मेरे बायें हाथकी ओर जैसे कोई उठा लाया और कण्ठभर पानीमें मैं तैर रहा था। एक सेकेण्ड भी इसमें नहीं लगा। यही ठीक-ठीक मुझे अनुभव हुआ। जहाँ पानी बिल्कुल शान्त था, वहाँ मैं तैर रहा था। मन-ही-मन आश्चर्यमें डूब गया। आजसे लगभग बाइस वर्ष पहलेका अनुभव है। ऐसे ही न जाने कितनी बार भगवानने मुझको कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे बचाया है। यदि लिखवाने बैठ जाऊँ तो एक पोथा बन जायगा। इसलिये इस प्रसंगको यहीं छोड़कर यही कह रहा हूँ कि बिल्कुल घबड़ाना मत बहिनी! सम्पूर्ण साहसको बटोरकर हँसते-हँसते इस कष्टको सह लेना। बस, तुमको अनुभव हो जायेगा कि मेरा कहना कितना अधिक मूल्यवान है। जीवनभर मैंने यही अनुभव किया है। सदा यही अनुभव मुझे हुआ कि भगवानके मंगलमय विधानपर अपनेको छोड़ देनेके पश्चात् कुछ भी बाकी नहीं रहेगा। सब कर्तव्य पूर्ण हो जायेंगे और हँसते-खेलते मृत्युकी शान्तिमय गोदीमें चिरकालतक विश्राम करने लगोगी। हो सके तो इस ओर ही चेष्टा करना।

राधा राधा राधा राधा

* * * * *

श्रीमहाराजजी का अचानक आगमन

दिनांक २७-४-८६ को दिल्लीसे टेलीफोन आया कि आगामी प्रातःकाल श्रीमहाराजजी गोरखपुर पधार रहे हैं। इसे अचानक सूचना कहना चाहिये। इससे हम सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई। विगत श्रीराधाष्टमी महोत्सवके बाद जब महाराजजी वृन्दावनके लिये प्रस्थान करने लगे तो माँने उनसे शीघ्र पधारनेके लिये अनुरोध किया था। ऐसा लगता है कि माँके अनुरोधको महाराजजीने आदेशवत् शिरोधार्य कर लिया।

२८-४-८६ के प्रातःकाल महाराजजीका शुभागमन हुआ। उनके पधारनेसे बाबा तथा माँको अपार आनन्द हुआ। वस्तुतः गीतावाटिकाके वातावरणमें उल्लास परिव्याप्त हो गया। वृन्दावन धामकी, धामके

ठाकुरकी, ठाकुरके भक्तोंकी और भक्तोंकी रहनीकी सरस चर्चाने एक बार पुनः सबको संसिक्त करना प्रारम्भ कर दिया।

महाराजजीके शुभागमनका एक हेतु और भी था। माँके अनुरोधकी स्मृति तो महाराजजीको सदा बनी ही रहती थी, इसके बाद भी एक विशेष कार्य था। महाराजजी द्वारा लिखित कृतियोंका एक संग्रह उन दिनों प्रकाशित हुआ था। श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-राज्यका रस-रहस्य एवं विलास-माधुर्य ही इन कृतियोंमें शब्द-बद्ध हुआ है। इसे मधुर-रस-प्रधान ग्रन्थ कहना उपयुक्त रहेगा। महाराजजीको अपनी कृतियोंका प्रकाशन तनिक भी अभिप्रेत नहीं था, किन्तु निकटवर्ती निज जनोंके आग्रहभरे बार-बार अनुरोधको देखकर उन्हें अपनी सहमति विवशतः प्रदान करनी पड़ी। इस ग्रन्थका नाम है 'अद्‌भुत श्याम तमाल'। १२०० पृष्ठोंवाले इस विशाल ग्रन्थमें महाराजजीके चार लेख हैं। उनके नाम हैं – १-श्याम तमाल सुषमा कमनीय वेलि, २-सर्वस्वसार प्रिय सखी, ३-पूर्णता या पूर्णानुभव और ४-निज स्वरूप वैशिष्ट्य। सन् १९६१ से लेकर सन् १९८० तककी अवधिमें लिखित चार विस्तृत कृतियाँ इस ग्रन्थमें गुम्फित हैं। ग्रन्थके अक्षर महीन हैं, किन्तु इसकी सुसज्जा बड़ी ही आकर्षक है। ग्रन्थमें दिये गये चार चित्रोंमें से तो एक चित्र स्वयं महाराजजी द्वारा चित्रांकित है।

महाराजजीका निश्चय था कि इस ग्रन्थके प्रकाशित होते ही पहली प्रति सर्वप्रथम बाबाको भेंट करनी है और इस निश्चयको क्रियान्वित करना भी गोरखपुर-यात्राका एक हेतु था। २८-४-८६ के अपराह्न कालमें ठाकुरजीने बाबाके कर-पल्लवमें यह ग्रन्थ अर्पित किया। बाबाके नेत्र आह्लादसे परिपूर्ण हो उठे। बाबाने ग्रन्थको अपने मस्तकसे लगाया तथा इसके प्रकाशनके लिये विविध भाँतिसे साधुवाद दिया। फिर ग्रन्थका आरम्भिक अंश पढ़कर बाबाको सुनाया गया। बाबा ग्रन्थकी एवं महाराजजीकी भूरि-भूरि सराहना रह-रह करके कर रहे थे। २९-४-८६ को ग्रन्थकी दूसरी प्रति माँको भेंट-स्वरूप प्रदान की गयी। महाराजजीकी इस आत्मीयतासे माँका मुख-मण्डल मुस्कुराहटसे खिल उठा। माँने दीनता भरी वाणीमें धीरे-धीरे मन्द स्वरमें महाराजजीसे कहा – मैं भला इसे क्या समझूँगी? पर आप यहाँ पधारे, यह आपकी महान कृपा है।

पूज्य महाराजजी, ठाकुरजी आदि जब-जब गीतावाटिका आते थे, तब-तब सरसताकी वर्षा होती ही थी। इनके चरणोंमें बार-बार वन्दन! महाराजजीने यहाँसे ७-५-८६ को मध्याह्नके समय वृन्दावनके लिये प्रस्थान किया। महाराजजीके प्रस्थान कर चुकनेके बाद बाबाने कहा – महाराजजीकी उपस्थिति तो उत्सवस्वरूप ही होती है।

* * *

इसबार वाली यात्रामें ठाकुरजीके मुखसे बाबाके बारेमें कई मधुर बातें सुननेको मिलीं। ठाकुरजी बड़ी पुरानी बातें सुना रहे थे। बात सम्भवतः ३२, ३३ वर्ष पहलेकी होगी। उन दिनों बाबा कोठीके भीतर जाकर भिक्षा किया करते थे। पूजाघरके बाहरवाले बरामदेमें भिक्षा हुआ करती थी। बाबाकी पत्तलमें स्वयं माँ परोसा करती थीं।

एक दिन जब बाबा भिक्षा कर रहे थे, तब गोस्वामीजी वहीं पासमें बैठे हुए थे। भिक्षाके समय भी व्रज-भावकी रसीली सुन्दर चर्चा होती रहती थी। उस दिन भीड़ नहीं थी। गोस्वामीजी थे, ठाकुरजी थे और एक-दो व्यक्ति और रहे होंगे। वे सभी अन्तरंग जन ही थे। भिक्षा करते-करते उस रसीली चर्चाके मध्य बाबाके मनमें कोई मधुर भाव उदित हुआ। बाबाने गोस्वामीजीसे कहा – गोस्वामीपाद! वह कौन-सा पद है?

बाबाने यह कहा हाथमें कौर लिये-लिये। इस जिज्ञासाको व्यक्त करते समय बाबाके नेत्र कुछ-कुछ मुँद गये थे। उनके कौर वाला दाहिना हाथ कुछ ऊपरकी ओर उठ गया था। गोस्वामीजीको बाबाके संकेतोंकी और उनके भावकी जानकारी थी। जो रसीली चर्चा चल रही थी, उससे गोस्वामीजीको उस पदका अनुमान हो गया था। बाबाके द्वारा वैसा कहते ही गोस्वामीजीने उस अभिलषित पदका गायन आरम्भ कर दिया। जैसा भावमय पद था, वैसा ही भावपूर्ण गायन था। उस शान्त वातावरणमें पदका भाव-माधुर्य और गायनका स्वर-लालित्य लहराने लगा। बाबाकी जो आँखें कुछ-कुछ मुँदी हुई थीं, अब पूर्णतः मुँद गयीं। कौर वाला दाहिना हाथ जो ऊपर उठा हुआ था, वह धीरे-धीरे नीचे आकर स्थिर हो गया। बाबाके नेत्रोंसे अश्रु-बिन्दु टपकने लगे। अब केवल उनके कपोल ही नहीं भीग रहे थे, अपितु उनके आस-पासका सारा वातावरण भावसे भीग उठा। बाबाके दाहिने हाथसे कौर कब गिर गया, उनको पता ही नहीं चला। भिक्षा करना

स्थगित हो गया।

उस समय वहाँ जितने भी चार-पाँच लोग उपस्थित थे, सभी बाबाकी भावमयी स्थिति देखकर बड़े विभोर हो रहे थे, केवल एकको छोड़कर और वह एक थीं माँ। सभी उपस्थित जन आनन्दानुभवमें निमग्न हो रहे थे, पर माँका मन बड़ा खिन्न था कि बाबा ठीकसे भिक्षा नहीं कर पाये। बाबाकी भावविह्वल स्थितिकी स्मृतिसे ठाकुरजी बड़े ही पुलकित हो रहे थे।

मैंने ठाकुरजीसे पूछा – गोस्वामीजीने कौन-सा पद गाया था?

ठाकुरजीने कहा – इस समय तनिक भी स्मरण नहीं कि वह पद कौन-सा था, पर उस पदका प्रभाव और उस समयका सारा दृश्य मेरी आँखोंके सामने नाच रहा है।

ठाकुरजीके मुखसे इन भावपूर्ण प्रसंगोंको सुनकर हम सभी जनोंको कितना सुख मिलता था, क्या बतलायें... ... !

* * * * *

मन्दिरकी सीढ़ियोंपर

श्रीराधा कृष्ण साधना मन्दिरमें जगज्जननी भगवती श्रीसीताजीका जन्मोत्सव सोत्साह मनाया गया। अनुमानतः यह प्रसंग सन् १९८६ या १९८७ का होना चाहिये। मन्दिरके बड़े पुजारीजीने बाबासे उत्सवमें पधारनेके लिये अनुरोध किया और बाबा डा. श्री एल.डी. सिंहजीके हाथका सहारा लिये हुए मन्दिरमें आये। बाबाकी उपस्थितिसे उत्सवमें रंग आ गया। पूज्या माँ तो बाबासे पहले ही मन्दिरमें आ गयी थीं। पूज्या माँने अपने कर-कमलोंसे नीराजन किया। प्राकट्यकी आरतीके पश्चात् जब गर्भगृहमें षोडशोपचारसे सविधि पूजन-अर्चन हो रहा था, तब बाहर कीर्तन तथा पदगानका क्रम चल रहा था। श्रीजोशीजीने गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी द्वारा विरचित पद गाया 'कबहुक अंब अवसर पाइ'। इस पदको सुनकर बाबाकी भावनाएँ बड़ी उर्मिल हो उठीं। पदमें आत्म-निवेदन है ही ऐसा, जिससे भावोंको सूद्दीपन मिले। उत्सवके सम्पन्न होनेपर जब बाबा अपने आसनसे उठकर चलने लगे, उस समय भी भगवती श्रीसीताजीके कोमल

और सहज वात्सल्यकी सरस चर्चा कर रहे थे।

मातृ-हृदयका सहज वात्सल्य कैसा अद्‌भुत होता है, इसीका बखान करते-करते बाबा मन्दिरसे बाहर आ करके सीढ़ियोंसे नीचे उतर रहे थे। दोपहरके लगभग एक बज रहे थे। तीखी धूपके कारण सीढ़ियोंके पत्थर बहुत गर्म हो गये थे। पत्थरोंकी तपन पैरोंके तलवोंके लिये असह्य हो रही थी। वात्सल्यकी चर्चा करते-करते बाबाके श्रीमुखसे ऐसा निकल गया– इन गर्म पत्थरोंसे तो पैरोंमें बड़ी जलन हो रही है।

बाबाका इतना कहना था कि मैंने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया– बाबा! आपके इस कथनको सुनकर मुझे एक श्लोक याद आ रहा है।

नीतं यदि नवनीतं नीतं नीतं किमेतेन।
आतप-तापित-भूमौ माधव! मा धाव मा धाव।।

(ग्रीष्म ऋतुमें मध्याह्नके समय मक्खनकी चोरी करते हुए श्रीकृष्णको गोपीने अपने घरके नवनीत-कक्षमें देख लिया। अब गोपीके द्वारा पकड़ लिये जानेके भयसे श्रीकृष्ण नंगे पैर सूर्य-तापसे तपते हुए पथपर भाग चले। पथकी तप्त धूलिसे श्रीकृष्णके कमलोपम कोमल पदोंमें भीषण जलन हो रही होगी, इस दृश्यसे संतप्त गोपी पुकार उठती है– हे माधव! यदि नवनीत ले लिया तो ले लिया, इससे क्या हुआ, परन्तु धूपसे तप्त भूमिपर तुम मत भागो, मत भागो।)

बाबाके लिये यह कोई नवीन श्लोक नहीं था। इसे बाबा कई बार सुन चुके थे तथा बोल भी चुके थे। सीढ़ियोंकी तपनसे संतप्त बाबाने ज्यों ही इस श्लोकको सुना, वे देहातीत हो गये। इसे सुनते ही बाबाने उल्लासित स्वरमें इस श्लोककी आवृत्ति की और फिर..... फिर गम्भीर मौन —— और फिर नितान्त अन्तर्मुख। उस संतप्त हृदया गोपीके भाव-वैकल्यकी गहनताने बाबाको गहरे रूपसे अन्तर्मुख बना दिया। भाव-निमग्न बाबाको उस अत्याकुला गोपीके विकलान्तरने पूर्ण रूपसे विभावित कर लिया। बाबा डा.एल.डी.सिंहका सहारा लिये धीरे-धीरे सीढ़ियोंसे उतर रहे हैं, पर अब उन तपती सीढ़ियों की तपनसे होनेवाली जलनका भान नहीं। बाबा चुपचाप अपने 'नेह निकुञ्ज' में चले आये और लेट गये गैरिक बिस्तरपर। बहुत देरतक निस्स्पन्द पड़े रहे।

* * * * *

प्राकृतिक वातावरण में श्रीयोगिनी-लीला

प्रतिवर्षकी भाँति सन् १९८७ ई.में भी श्रीराधाष्टमी महोत्सव सोत्साह मनाया गया। महोत्सवके कई दिन पहले श्रीमहाराजजी वृन्दावनसे यहाँ गीतावाटिकामें पधार गये थे। महाराजजीका शुभागमन सदैव ही बाबाको परमाह्लाद प्रदान करता था। यह बात सत्य है कि महाराजजीकी उपस्थितिसे वाटिकामें मंगलका विस्तार होता था और वाटिकाके वातावरणमें सरसता व्याप्त हो जाती थी। जबतक महाराजजी यहाँ रहे, वे प्रतिदिन बाबाके पास प्रातःकाल जाया करते थे और लगभग एक घंटा बाबाके पास बैठा करते थे। इन क्षणोंमें बाबाके एवं महाराजजीके आह्लादकी छवि दर्शनीय हुआ करती थी।

सप्तमी तिथिको ही मध्याह्नके बाद अपराह्न कालमें श्रीयोगिनी लीला देवर्षि नारद मन्दिरके समक्ष हुई। देवर्षि नारद मन्दिर गीतावाटिकाके पिछले भागमें है। यदि वर्तमान गीतावाटिकाके सामनेवाले भागमें हनुमानप्रसाद पोद्दार-स्मारक-समितिका कार्यालय, बाबूजीका निवास-भवन, श्रीराधाकृष्ण मन्दिर, समाधि आदि हैं तो उसके पिछले भागको एक लघु वनस्थली कह सकते हैं; जिसमें पेड़-पौधों, फूलों-लताओंकी बहुलता है और साधु-संतों-साधकोंके रहनेके लिये तीन-चार एकान्त कुटीर हैं। इसी एकान्त वातावरणमें देवर्षि नारदका एक छोटा-सा मन्दिर है। यह मन्दिर उसी स्थानपर निर्मित है, जहाँ देवर्षि नारद तथा महर्षि अंगिराने आकर बाबूजीको दर्शन दिया था। इसी स्थानपर बाबूजीको देवर्षि नारदसे उस दिव्य प्रेमोपदेशकी प्राप्ति हुई थी, जिसका पल्लवित स्वरूप है 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन', 'पद-रत्नाकर' एवं अनेक ग्रन्थ।

इसी मन्दिरके सामने श्रीयोगिनी-लीला हुई। इस लीलाकी न तो घोषणा की गयी थी और न इसके लिये मंचकी तैयारी की गयी थी। एक चौकीपर एक बड़ी कुर्सी रख दी गयी। वही श्रीप्रिया-प्रियतमका सिंहासन था और चौकीके सामने एक दरी बिछा दी गयी थी। यह दरी ही लीलाकी रासस्थली थी। जो थोड़े-बहुत दर्शक थे, वे भूमिपर ही बैठे थे। अधिकांश लोग बैठे-बैठे और कुछ लोग खड़े-खड़े लीलाका दर्शन कर रहे थे। हाँ, कोई-कोई पेड़ोंपर चढ़कर और डालपर बैठकर देख रहे थे। दर्शकगणका यह

दृश्य भी अपने ही ढंगका था। अवश्य ही बाबा एवं महाराजजीके लिये एक आसन बिछा दिया गया था।

ऊँची-ऊँची हरी-हरी वृक्षावली, विविध फूलोंके सघन पौधोंकी पंक्तियाँ, वहींपर तुलसीजीका एक छोटा-सा वन, सँकरी-सँकरी यत्र-तत्र पगडंडियाँ, इस प्रकारके सुरम्य प्राकृतिक वातावरणमें यह रासलीला हुई। प्रकृतिकी मनोरम दृश्यावलीने सहज ही स्वाभाविक रंगमंच प्रस्तुत कर दिया। क्या लीलाके पात्र और क्या लीलाके दर्शक, सभीको प्राकृतिक रंगमंचने बड़ा उद्दीपन प्रदान किया। एक बात और, यदि एक ओर प्रकृतिका ऐसा सहज और शान्त वातावरण था तो दूसरी ओर प्रकृतिके धरातलसे सर्वथा उठे हुए दो संत-दर्शक, बाबा और महाराजजी वहाँ विराज रहे थे। इन सभी बातोंसे श्रीयोगिनी लीलाका रंग कुछ अनोखा ही रहा। साधारण दर्शकोंको भी भान नहीं कि गर्मीमें हम पसीनेसे भीग रहे हैं अथवा हम सब भूमिपर ही बैठे हुए हैं। सभीका मन लीलामें निमग्न था।

तभी एक आश्चर्य घटित हुआ। लीला लगभग दो-अढ़ाई घंटेतक हुई। लीलाके उत्तरार्धमें सूर्य भगवान इतना ढल आये कि वृक्षोंकी छाया हट गयी और बाबा तथा महाराजजीपर भगवान सूर्यकी किरणें सीधी पड़ रही थीं। उन तीव्र किरणोंसे बचाव करनेके लिये लीलाके मध्य न तो छाता ही लगाया जा सकता था और न स्थानान्तरण ही किया जा सकता था। भावनाएँ बड़ी विकल हो रही थीं, पर कोई उपाय भी नहीं था। तभी न जाने कहाँसे पूर्ण स्वच्छ आकाशमें बादलका एक टुकड़ा आ गया और तबतक छाता बनकर नभमें ठहरा रहा, जबतक लीला होती रही।

कहनेके लिये तो यह एक नगण्य घटना है, पर इससे विस्मय बहुत हुआ।

* * * * *

बाबूजीकी जयन्ती के अवसर पर श्रीरामकथा

सन् १९८७ के १९ सितम्बरको पूज्य बाबूजीका जन्म-दिवस था। बाबूजीकी जयन्तीके अवसरपर श्रीरामचरितमानसकी कथा कहनेके लिये चित्रकूटसे तुलसीपीठाधीश्वर प्रज्ञाचक्षु पूज्य आचार्य श्रीरामभद्रदासजी महाराज राघवीय यहाँ गीतावाटिका पधारे थे। श्रीरामचरितमानसके आधारपर श्रीलक्ष्मण-चरित्रपर आपका प्रवचन लगभग एक सप्ताह पर्यन्त प्रतिरात्रि डेढ़-दो घंटेतक होता। आपकी स्मरण शक्ति अद्‌भुत है। मानस, भागवत, उपनिषद् आदि अनेकानेक ग्रन्थ पूर्णतः कण्ठस्थ हैं। श्रीआचार्यचरणजीकी कथामें विद्वत्ता और भावुकता, दोनोंका अद्‌भुत समन्वय है। गोरखपुरके श्रोतागण आपके शास्त्र-पाण्डित्य और भाव-लालित्यसे बहुत प्रभावित रहे।

कौशल्यानन्दवर्धन दशरथकुमार श्रीरामललाजी ही आपके सेव्य हैं, जिन्हें आप मुन्ना सरकार कहते हैं। लड्डू गोपाल जैसे श्रीविग्रहकी बड़े भावसे सेवा-पूजा होती है। मुन्ना सरकारके प्रति आपका गुरुदेव वशिष्ठ भावसे अमित वात्सल्य है।

एक दिन श्रीआचार्यचरण बाबाके पास गये तो कहने लगे – बाबा! राघव पढ़ता नहीं है, आप इसे समझाइये कि पढ़ा करे।

उनके भावभरे शब्दोंको सुनकर बाबाका हृदय रीझ उठा।

* * *

एक बार बाबा श्रीआचार्यचरणके कमरेमें गये तो उन्होंने अपने मुन्ना सरकारको बाबाके युगल चरणोंमें रखते हुए श्रीराममललासे कहा – 'राघव! देखो, श्रीराधा बाबा आये हैं, इन्हें प्रणाम करो' और फिर बाबासे कहा – बाबा! आप इसे आशीर्वाद दें, जिससे इसका मन पढ़नेमें लगे।

बाबा तो इस वात्सल्य भावकी छविको देखकर अति विमुग्ध थे।

* * *

श्रीआचार्यचरण प्रायः प्रातःकाल बाबाके पास चले जाया करते थे। वहाँ एक बार उन्होंने बाबासे कहा – आपके श्रीमुखसे नित्य निकुञ्जेश्वरी भगवती श्रीराधाजीके सम्बन्धमें कुछ सुननेकी इच्छा होती है।

इस निवेदनके बाद भी बाबा कुछ अन्य ही चर्चा करते रहे, परंतु श्रीआचार्यचरण तो अपनी अभीष्ट वस्तु चाहते थे। श्रीआचार्यचरणने पुनः निवेदन किया – बाबा! विषयान्तर हो रहा है।

तब बाबाने कहा – श्रीराधा-महिमापर नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ही कुछ कह सकनेमें जब स्वयंको असमर्थ पाते हैं, तब फिर भला मेरी कहाँ गिनती है? हाँ, कुछ लोग ऐसे हैं, जो विद्याकी धुरीको धारण करनेके कारण अपने आपको धुरन्धर विद्वान समझते हैं। विद्वत्ताके अहंकारमें वे विद्वान भले थोड़ी देर बोल लें, परंतु एक बात है। किसी अचिन्त्य कृपाके फलस्वरूप यदि किसी ऐसे विद्वानको श्रीराधारानीकी नख-कान्तिका किंचित् दर्शन वस्तुतः लवार्ध मात्रके लिये हो जाय तो यह सर्वथा सत्य है कि उनकी सम्पूर्ण वाचालता सर्वांशमें पूर्णतः कुण्ठित हो जायेगी।

बस, बस, यही उत्तर तो श्रीआचार्यचरण सुननेके लिये उत्सुक थे। इतना सुनते ही वे बार-बार साधु-साधु कहने लगे। उस समय श्रीआचार्यचरणका भावोल्लास दर्शनीय था।

* * *

गुरुवार १७ सितम्बरका प्रसंग तो बड़ा मधुर है। प्रातःकाल श्रीआचार्यचरण अपने दो बाल-शिष्योंके साथ बाबाके पास गये। वहाँ लगभग आधा घंटा बैठे रहे तथा विविध प्रकारकी चर्चा होती रही। जब श्रीआचार्यचरण चलने लगे तो बाबाने कहा – चलिये, कुछ दूरतक पहुँचा आऊँ।

आस-पास उपस्थित भक्तोंने यही सोचा कि बाबा अपने बाड़ेके द्वारतक जायेंगे। बाबा तथा श्रीआचार्यचरण साथ-साथ चलते रहे। बाड़ेसे बाहर आ जानेके बाद भी बाबा साथ-साथ चलते रहे। श्रीआचार्यचरणने वापस लौटनेके लिये एक-दो बार अनुरोध किया, इसके बाद भी बाबा साथ-साथ चलते रहे। कई बार अनुरोध करनेके बाद भी बाबा जब वापस नहीं लौटे तो श्रीआचार्यचरणने कहा – ऐसा लगता है कि आज राघवकी इच्छासे आप उसके पास चल रहे हैं।

मार्गमें एक स्थानपर किसीने पान खाकर थूक दिया था। उसे देखकर बाबाने कहा – किसी ताम्बूलप्रेमीने यहाँ थूककर गन्दगी फैला रखी है।

इसपर श्रीआचार्यचरणने कहा – किसी सामाजिकता-ज्ञान-शून्य असभ्यने ही ऐसा किया होगा।

बाबाने तुरंत कहा और बड़े प्रसन्न स्वरमें कहा – नहीं महाप्रभु! यह नटखट चपल चञ्चल नन्दपुत्र ही विभिन्न रूपोंमें इस प्रकारकी लीला करता रहता है।

इस उत्तरको सुनकर श्रीआचार्यचरण एकदम खिल उठे। बाबाके कथनका और उनकी भागवती दृष्टिका वे बार-बार अनुमोदन करने लगे। 'सीय राम मय सब जग जानी'के भावसे आद्यन्त एवं पूर्णतः भावित उनकी भागवती दृष्टिपर श्रीआचार्यचरण बलिहार जा रहे थे।

कमरेमें प्रवेश करते ही बाबा मुन्ना सरकार श्रीराघवकी ओर अग्रसर हुए। सिंहासनके समीप पहुँचते ही श्रीआचार्यचरणजीके शिष्य श्रीदयाशंकरजीने श्रीराघवको उठाकर बाबाके हाथमें दे दिया।

बाबाने तुरन्त अपने मस्तकपर धारण किया। जब मुन्ना सरकार श्रीराघवको बाबाके हाथमें दिया तो श्रीआचार्यचरणने कहा – बाबा! यह पढ़ता नहीं है।

तुरन्त ही बाबाने कहा – ऐसा लगता है कि यह बहुत नटखट हो गया है।

इसपर श्रीआचार्यचरण तथा उपस्थित भक्तगण खुलकर विहसने लगे। बाबाने श्रीविग्रहको सिंहासनपर पधरा देनेके लिये श्रीदयाशंकरजीको दे दिया। सिंहासनपर झुंझुनिया, घोड़ा, मोर, चिड़िया, झारी, झूला, लुटिया, इस प्रकारके अनेक खिलौने रखे हुए थे। बाबाकी रुचि देखकर श्रीदयाशंकरजी क्रमशः एक-एक खिलौना देखनेके लिये बाबाको देने लगे तथा उस-उस खिलौनेका परिचय तथा उसकी उपयोगिता बतलाने लगे। एक बार श्रीदयाशंकरजीने बाँये हाथसे एक खिलौना दे दिया तो बाबाने तुरन्त कहा – भगवानके खिलौने भगवानके पार्षद हैं। इनको दाहिने हाथसे देना और लेना चाहिये। भगवत्परिकरका पूर्ण सम्मान करना चाहिये।

श्रीदयाशंकरजीने अपनी भूल स्वीकार की और फिर वे दाहिने हाथसे देने लग गये। सच्ची बात तो यह है कि उल्लास और उत्साहके आधिक्यमें यह भूल उनसे अनजाने ही हो गयी थी। बाबा प्रत्येक खिलौनेको लेते, प्यार भरी निगाहोंसे उसे देखते और फिर अपने मस्तकसे लगाते। प्रत्येक खिलौनेका दर्शन करना, परिचय जानना और वन्दन करना, इसमें बहुत

समय लग गया। इसपर टिप्पणी करते हुए श्रीआचार्यचरणजीने कहा – बहुतसे लोग मेरे मुन्ना सरकार श्रीराघवका दर्शन करने आये, परंतु आजतक किसीने भी इस प्रकारसे दर्शन नहीं किया।

सिंहासनपर ही एक चाँदीकी डिबिया थी। उसकी ओर संकेत करके बाबाने पूछा – इसमें क्या है?

श्रीदयाशंकरजीने वह डिबिया खोलकर श्रीआचार्यचरणजीके हाथमें दे दी। उसमें मुन्ना सरकारका काजू-किशमिश प्रसाद था। श्रीआचार्यचरणजीने वह प्रसाद अपने कर-पल्लवमें लिया तथा अपने कर-पल्लवसे बाबाको खिलाया। फिर उसका अवशेष बाबाके कर-पल्लवमें देकर श्रीआचार्यचरणजीने बाबाके कर-पल्लवसे अपने मुखमें प्रसाद पाया। इस पर दोनों संत खूब हँसे। श्रीआचार्यचरणजी तो बहुत ही अधिक हँसे।

इसके बाद बाबा और श्रीआचार्यचरणजी, दोनों बिछी हुई चौकीपर एक साथ बैठ गये। उस समय बाबाको अपनी चौकीपर अपने समीप बैठे हुए देखकर बड़ी ही भाव-विह्वल वाणीमें श्रीआचार्यचरणजी बोल उठे –

'हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा।।'

अति भाव-विभोर स्वरसे इतना कहते-कहते उनके नेत्रोंमें आँसू छलक उठे। श्रीआचार्यचरणजीने अनेक बार प्रयास किया कि बाबाके श्रीचरणोंका स्पर्श प्राप्त हो, पर यह भला बाबाको कैसे स्वीकार हो पाता? प्रत्येक बार बाबाने उसका निवारण ही किया।

थोड़ी देर बाद बाबा अपनी कुटियापर वापस चले आये, परंतु बाबाके मनपर श्रीआचार्यचरणजीके कोमल वात्सल्य-भावकी अद्भुत छाप थी। मुन्ना सरकार श्रीराघवके प्रति उनके अनोखे वात्सल्य-भावकी बाबाने बड़ी भावभीनी भाषामें कई बार सराहना की।

* * * * *

पूज्य पंडितजी की भिक्षा

सन् १९८८ ई.की श्रीराधाजन्माष्टमीके चार-पाँच दिनों बाद बाबाकी भाव-विभोरताकी एक निराली छविके दर्शनका सौभाग्य मिला। मध्याह्न कालमें बाबा परिक्रमाके बाद माँके दर्शन करनेके लिये उनके कमरेमें गये। मैं उस कमरेमें पाँच मिनट पहले ही पहुँच गया, जिससे कि बाबाके विराजनेके लिये आसन बिछा दूँ। आसन बिछाते-बिछाते मैंने माँसे कहा – माँ! मैं परसों वृन्दावन जा रहा हूँ। कोई कार्य हो तो बतलाओ।

माँ ने कहा – वहाँ जा रहे हो तो पूज्य पण्डितजी महाराज (परम पूज्य पं.श्रीगयाप्रसादजी)के श्रीचरणोंमें मेरा प्रणाम कहना तथा मेरी ओरसे भिक्षा करवा देना।

माँके इतना कहते-कहते बाबा आ गये। बाबाने पूछा – माँ क्या कह रही है?

मैंने बाबासे कहा – माँ कह रही है कि वृन्दावन जा रहे हो तो पूज्य पण्डितजी महाराजको मेरी ओरसे भिक्षा करवा देना।

इतना सुनते ही माँसे बाबा कहने लगे – मैया! उनकी भिक्षा करा, अवश्य करवा। वे भिक्षा स्वीकार कर लेते हैं, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। उन जैसा भाव-भरित संत व्रजमण्डलमें भला कहाँ है?

मैंने बाबासे निवेदन किया – बाबा! जब-जब मैं वृन्दावन जाता हूँ, माँ भिक्षाके लिये कहा ही करती हैं और इस अनुरोधको पूज्य पण्डितजी स्वीकार कर ही लिया करते हैं।

बाबाने कहा – यह उनकी महान कृपा है।

इसके बाद मैंने बाबासे पूछा – पूज्य पण्डितजी आपके बारेमें कुछ पूछेंगे तो मैं क्या कहूँगा?

मेरा इतना कहना था कि बाबाके नेत्र गीले हो उठे। उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़ लिये और मुझसे कहने लगे – आप कह दीजियेगा कि बाबाने हाथ जोड़े-जोड़े कहा है कि आपके मानस पटलपर मेरी स्मृति उभर आती है, यह मेरा परम सौभाग्य है।

इतना कहते-कहते बाबाके नेत्र और अधिक भर आये। बाबा जो

बोल रहे थे, उनके अधरोंका एक-एक शब्द प्यारमें भीगा हुआ था, शब्दके एक-एक अक्षरसे प्यार चू रहा था। कुछ क्षण रुककर हाथ जोड़े-जोड़े बाबाने पुनः कहा – आज व्रजमण्डलमें उन जैसा कोई नहीं। उनकी महिमाका आदि-अन्त नहीं। उनके श्रीचरणमें बार-बार वन्दन!

फिर बाबा बोल नहीं पाये। मैं तो कुछ क्षण चुपचाप बाबाके भाव-विभोर मुखकी ओर देखता रहा। इसके थोड़ी देर बाद फिर बाबा माँसे बात करने लगे।

* * * * *

बाबा का जन्मोत्सव

१६ जनवरी १९८९ के दिन बाबाका जन्म-दिवस था। यह सर्व-प्रथम अवसर था, जब कि बाबाके जन्म-दिवसपर श्रीमहाराजजी गीतावाटिकामें विराज रहे हों। बाबा जब अत्यन्त रुग्ण हो गये थे, तब महाराजजी यहाँ पधारे थे। उन दिनों बाबाके स्वास्थ्यने भयावह मोड़ ले लिया था। सभी भयान्वित हो उठे थे। क्रमशः तबीयतमें पर्याप्त सुधार हुआ। यह तो प्रभुकी अहैतुकी कृपा एवं महाराजजीकी शुभ संनिधिका मंगलमय परिणाम था।

इस वर्ष यह एक अच्छा संयोग घटित हो गया कि बाबाके जन्म-दिवसकी जो विक्रम-तिथि तथा जो अंग्रेजी तारीख तब आविर्भावके समय थी, वही अब इस दिन भी थी। तब भी पौष शुक्ल नौमी तथा १६ जनवरी थी और इस वर्ष भी यही तिथि और यही तारीख रही। प्रातःकाल सूर्योदयसे बहुत पूर्व प्रभात-फेरी निकली और निकली श्रीराधाकृष्ण मन्दिरसे। यद्यपि घोर शीत पड़ रही थी, इसके बाद भी वाटिकाके-मोहल्लेके-नगरके अनेक भाई-बहिन मंगला-आरतीके समय मन्दिरमें स्नानादिसे निवृत्त होकर उपस्थित हो गये। प्रबल शीतके कारण बार-बार ऐसी आशंका हो रही थी कि मंगला-आरतीमें सम्भवतः बहुत कम लोग आ पायें, पर यह स्पष्ट दीख रहा था कि लोगोंके उत्साहके आधिक्यको शीतकी प्रबलता स्पर्श नहीं कर पा रही है।

मन्दिरमें मंगला-दर्शनके उपरान्त ठाकुरजीने बड़ा भाव-पूर्ण कीर्तन करवाया। जन्म-दिवसका मंगल अवसर, मन्दिरकी पावन स्थली,

प्रातःकालका शान्त वातावरण, भक्तोंकी विभोर श्रद्धा, ठाकुरजीका भावपूर्ण गायन, इन सबके कारण प्रातःकालीन पद-कीर्तन एवं नाम-कीर्तनका रंग कुछ अद्‌भुत ही था। उससे सभीके अन्तरमें भक्ति-भावना मधुर हिलोरे लेने लगी। उस हिलोरमें लहराते हुए श्रीराधाकृष्ण मन्दिरसे प्रभातफेरी निकली। अनेक बहिनोंके हाथोंमें फल, फूल एवं मेवोंसे भरे हुए सजे हुए थाल थाल अतीव सुशोभित हो रहे थे। प्रभात-फेरी करते-करते सभी गिरिराजजीके पास आये।

बाबा अपनी कुटियामें गैरिक आसनपर विराजे हुए श्रीमद्भगवद्‌गीता तथा श्रीरामचरितमानसका पाठ सुन रहे थे। बाबा नित्य प्रातःकाल इनके पावन पाठको सुना करते थे। सभीने जाकर बाबाको प्रणाम किया। फिर श्रीगिरिराज भगवानके पूजनका कार्यक्रम था। सभी भक्त वहाँ परिसरमें बैठ गये। आज प्रातःकाल श्रीगिरिराजजीका सविधि विस्तृत पूजन स्वयं महाराजजीने किया। पूजनके बाद महाराजजीने प्रसादका वितरण किया। सभीको महाराजजी अपने हाथसे फल तथा मेवे दे रहे थे। सभीका मन बड़ा भावमय हो रहा था। प्रातःकालका सभक्ति आराधन एवं सोल्लास कीर्तन सभीके भावोंको पल-प्रति-पल अधिकाधिक सत्त्व सम्पन्न बना रहा था।

अधिकांश व्यक्तियोंके दैनिक नित्य नियम अभी शेष थे। नित्यके दैनिक अर्चन-वन्दन और पूजा-पाठसे निवृत्त होकर सभी भक्तगण पुनः दस बजे श्रीराधाकृष्ण मन्दिरमें एकत्रित हुए। दस बजे मन्दिरसे श्रीप्रिया-प्रियतमके सचल भगवद्‌विग्रहकी शोभा-यात्रा निकली।

इस शोभा-यात्रामें मन्दिरके भगवद्‌विग्रहके अतिरिक्त श्रीराधाकृष्णके, श्रीशिवपञ्चायतनके, श्रीहनुमानजी महाराजके तथा श्रीलड्डूगोपालजीके नवीन श्रीविग्रह भी थे। ये सभी नवीन श्रीविग्रह प्रतिष्ठित होनेवाले हैं उस मन्दिरमें, जो बाबाके जन्मस्थानपर अभी-अभी बना है। बाबाकी जन्मभूमि कहलानेका गौरव फखरपुर ग्रामको है, जो बिहारके गया जिलेमें पड़ता है। फखरपुर ग्रामके मन्दिरमें पधरानेके पूर्व परम पूज्य बाबाकी सिद्ध दृष्टि इन श्रीविग्रहोंपर पड़ जाय, इसीलिये ये श्रीविग्रह गीतावाटिका लाये गये थे। आगामी वसंत पंचमीके दिन वहाँ उस नवनिर्मित मन्दिरमें ये श्रीविग्रह प्रतिष्ठित किये जायेंगे।

गीतावाटिकाकी परिक्रमा लगाते हुए यह शोभा यात्रा बाबूजीके

पावन-कक्षके बाहर खुली जगहमें थोड़ी देरके लिये ठहर गयी। वहाँ माँने श्रीप्रिया-प्रियतमके भगवद्विग्रहका तथा इन सभी नवीन श्रीविग्रहोंका बड़ी भक्ति-भावना सहित पूजन-वन्दन किया। माँको विस्तार पूर्वक इन नवीन श्रीविग्रहोंका परिचय दिया गया। फिर सभी लोग समाधि एवं श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा देते हुए बाबाके पास वहाँ आये, जहाँ वे खुले स्थानमें विराजे हुए धूप-सेवन कर रहे थे। वहीं सारे श्रीविग्रहोंको सुसज्जित सिंहासनपर पधरा दिया गया। महाराजजी भी बाबाके समीप अपने उच्चासनपर विराजित हो गये। सभी भक्त-गण बाबा और महाराजजीको घेरकर श्रीविग्रहोंके समक्ष बैठ गये।

कार्यक्रमका शुभारम्भ हुआ महाराजजीके पद-गायन द्वारा। महाराजजीने श्रीप्रबोधानन्दजी सरस्वतीद्वारा संस्कृत भाषामें विरचित एक अष्टपदीका गायन किया, जिसकी पहली पंक्ति है –

'स्मरतु मनो मम निरवधि राधाम्'।।

इस अष्टपदीकी २२ पंक्तियोंमें नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाजीके नख-शिख शोभाका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। महाराजजी अष्टपदीकी पंक्तियोंकी पद-पदपर आवृत्ति करते हुए बड़ी मस्तीके साथ गायन कर रहे थे और प्रत्येक आवृत्तिपर बाबाकी मस्ती भी मात्र अवलोकनीय ही नहीं, अपितु पल-पलपर अधिकाधिक आस्वादनीय थी। अनेक बार बाबाके श्रीमुखसे सराहनाके शब्दोच्छवास प्रस्फुटित हुए। बाबाका आनन्दोल्लास महाराजजीके मधुर भावोंको और अधिक आन्दोलित कर देता था। दो संतोंके आनन्दोल्लासका यह संगम सारे समुदायको मधुरानन्दोदधिकी लहरियोंपर बहाये ले जा रहा था। महाराजजी आनन्दातिरेकमें अपनी बाहुओंको बार-बार उठाते हुए गायन कर रहे थे। एक बार तो बड़ा विचित्र भावमय दृश्य देखनेको मिला। महाराजजीने ज्यों ही निम्नलिखित पंक्तियाँ गायीं –

रसिक सरस्वति गीत महाद्भुतराधारूपरहस्यम्।
वृन्दावनरसलालसमनसामिदमुपगेयमवश्यम् ।।

और फिर उन्होंने गाते-गाते 'राधारूपरहस्यम्' की आवृत्ति की, उसी समय बाबाका वाम-कर-पल्लव हृदयस्थ आह्लादकी विवशाभिव्यक्तिवशात् भावमयी-नृत्यमयी मुद्रामें लहराने लगा। बस-बस, तभी-तभी, उसी समय

उस लहराते हुए वाम-कर-पल्लवको महाराजजीने अपने लहराते हुए दक्षिण-कर-पल्लवसे धीरेसे थाम लिया। कर-पल्लवका कर-पल्लवसे यह स्पर्श, मात्र संस्पर्श नहीं था, अपितु था रसावेशका रसाविष्टद्वारा रसावराधन-रसानुमोदन-रसाभिनन्दन। उस रसमय छविको देखकर भावुक भक्तोंके खिले हुए रसार्द्र युगल नेत्र खुले-के-खुले रह गये। उस समय इन दो संतोंके हृदयकी जो स्नेहिलता-उर्मिलता थी और भावोंकी जो मृदुलता-विपुलता थी, उसका वर्णन मैं कर नहीं पा रहा हूँ। उस प्रसंगकी कल्पनातीत सुन्दरता-मधुरता एवं प्रसंगके प्रभावकी वर्णनातीत विशदता-अतिशयता तो मात्र अनुभवगम्य है। इस अद्‌भुत छविका मादक प्रभाव महाद्‌भुत था। इसकी स्मृति मात्र आनन्द-विभोर बना रही है।

महाराजजीके गायनके उपरान्त बाईने बाबा द्वारा रचित 'जय जय प्रियतम' काव्य का वह अंश गाकर सुनाया, जिसमें वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके प्राकट्यका वर्णन है। यह वर्णन लगभग २४, २५ छन्दोंमें है। बाईके स्वरमें स्वर मिलाते हुए अन्य कई बहिनें साथ-साथ गायन कर रही थीं। इसके बाद ठाकुरजीने भी 'जय जय प्रियतम' काव्यका वह अंश सुनाया, जिसमें कालिन्दी-कूलपर विराजित कृष्णप्रिया श्रीराधाके चरणकमलसे चिपकी हुई तट-रेणुकाका वर्णन है। चरणार्पिता रेणुकाके समर्पण-भावकी गरिमाका, समर्पिता रेणुकाको प्रदत्त आश्वासनका और प्रियतम श्रीकृष्ण द्वारा आश्वासन-निर्वाहका यह भावपूर्ण वर्णन भी अपने ही ढंगका है।

वे छः छन्द इस प्रकार हैं –

प्रक्षालित किये तरंगोंने फिर पद हम दोनोंके, प्रियतम!
व्याकुल होकर आ चिपट गयी रेणुका किंतु अमला, प्रियतम!
'क्यों छोड़ चले तुम मुझे यहीं, दम्पति हे!' थी कहती, प्रियतम!
उज्ज्वल वितान था तान रहा ऊपर हिमकर करसे, प्रियतम।।

मनमें मैं व्यथित हुई-सी थी कह गयी – 'न छोड़ूँगी' प्रियतम!
'कोई भी हो, कैसी भी हो, जो जुड़ी तनिक-सी है', प्रियतम!
आशा उसकी मैं क्यों तोड़ूँ, साँवर तो हैं मेरे, प्रियतम!
दूँगी कह जो, कर लेंगे, फिर यह तो है पद थामें प्रियतम।।

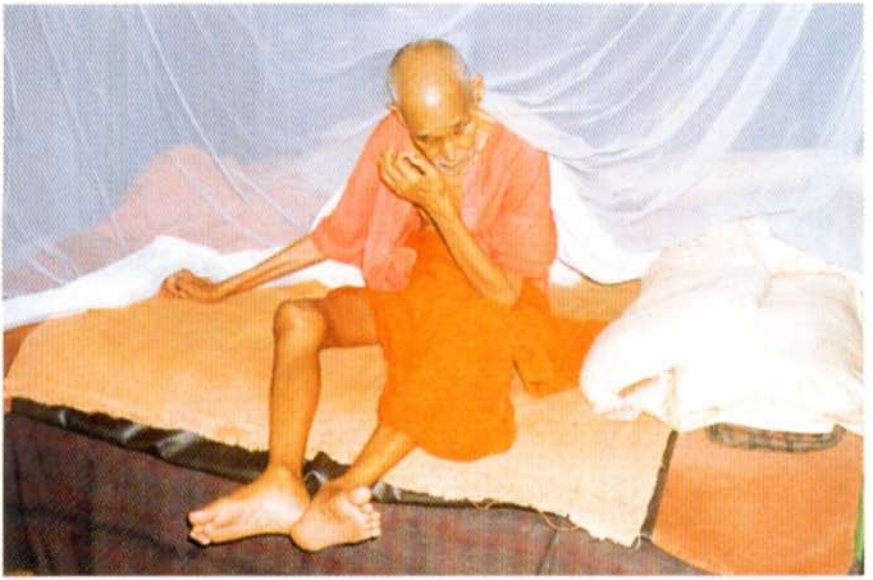

अपने ही खयालों में

शीत-ऋतु में धूप सेवन

मधुर चर्चा

स्वजनों के मध्य

कितनी मृदुला कितनी हलकी, कितनी उजली यह है! प्रियतम!
जड़ बनी अपनपौ खोकर है मेरे ही लिये पड़ी, प्रियतम!
साँवरकी यह दासी इसकी निष्ठा कैसे भूले, प्रियतम!
'हे धूलि! परम मंगल हो, ये स्वीकार करें तुमको' प्रियतम।।

हे प्राणनाथ! हो गयी देर अब चलो कुञ्जमें हे प्रियतम!
हे श्यामचन्द्र! किरणोंका हूँ स्वागत करती कहती, प्रियतम!
देते रहना शीतलता ही अविराम यहाँ सबको, प्रियतम!
फिर रास दिखाऊँगी तुमको, कह चली, चले तुम भी प्रियतम।।

कुछ बात बताकर तुम हँसते, बन जाती 'फूल' हँसी, प्रियतम!
मेरे आगे बन जाता था सुन्दर पथ सुमनोंका, प्रियतम!
रखते पर पद तुम रजमें थे कुसुमोंको बचा-बचा प्रियतम!
था हेतु बताया – 'प्यारी! हैं प्राणोपम रजकणिका, प्रियतम।।

जब दयामयी तुमने इच्छा कर ली ये साथ चलें, प्रियतम!
त्यागूँ कैसे फिर मैं इनको, हूँ जहाँ रहेंगी ये, प्रियतम!
मेरे प्राणोंकी रानीके पदमें जो चिपक गयीं, प्रियतम!
उनको क्या दे सकता हूँ मैं, ऋणिया हूँ नित्य बना', प्रियतम।।

ठाकुरजीने इन छः छन्दोंको शिवरञ्जनी रागमें गाया था और सारा वातावरण छन्द-प्रति-छन्द गायनसे अधिकाधिक भावमय होता जा रहा था।

'जय जय प्रियतम' काव्यके इस सरस प्रसंगका एक अति विशेष महत्त्व है और इस महत्त्वकी ओर संकेत स्वयं बाबाने बहुत पहले एक बार किया था। सन् १९५६ की शरद पूर्णिमाको बाबाने काष्ठ मौन व्रत लिया था। यह ऐसा अवसर था, जब बाबा रसोदधिमें गहनावगाहन हेतु अवतरण करनेवाले थे। उस अवसरपर मौन व्रत लेनेके कुछ ही देर पूर्व कुटियाके पूर्णैकान्तमें बाबा और बाबूजीके मध्य थोड़ी देर पारस्परिक मधुर संलाप हुआ था। बाबाने यह तो बतलाया नहीं कि संलाप क्या हुआ था, पर इतना अवश्य संकेत रूपमें कहा था कि इस यमुना-तट-लीलामें जिन भावोंकी प्रधानता है, लगभग ऐसी ही भावधारा उभर-उभर करके उस एकान्त संलापके समय हम दोनोंके अन्तरको अत्यन्त विह्वल बना रही थी। इस सरस लीलाके और उस मधुर संलापके भाव-प्रवाहमें अनुमानातीत साम्य है।

अब इस प्रसंगसे यह तथ्य स्पष्ट ध्वनित होता है कि बाबासे जो-जो

व्यक्ति जुड़े हुए हैं, चाहे वे कैसे भी हों, उन-उनका पूर्ण दायित्व बाबूजीने स्वीकार कर लिया है और यह प्रसंग चरणाश्रित जनोंके लिये कितनी अधिक प्रेरणा और कितने अधिक आश्वासनकी वस्तु है। मैं औरोंकी बात तो कहता नहीं, पर मैं अपनी कह सकता हूँ कि बाबाकी इस वाणीकी स्मृति होते ही अन्तर परम धन्यता और परम सौभाग्यके भावोंसे आप्लावित हो उठता है।

ठाकुरजीके गायनके बाद हरिवल्लभजीने हरिनाम कीर्तन करवाया और उसके बाद भगवद्विग्रहोंका नीराजन एवं प्रसाद-वितरण हुआ। आज बाबा बड़ी ही प्रसन्न मुद्रामें आद्यन्त रहे।

इस कार्यक्रमके बाद श्रीराधाकृष्णके दो चित्रोंका उन्मुक्त वितरण हुआ। बाबाके हाथसे चित्र पाकर सभी बड़े आनन्दित हो रहे थे। मेरा अनुमान है कि जिन-जिनने बाबाके हाथसे चित्र प्राप्त किये हैं, वे लोग उसे अपने पूजाघरमें पधरा दिये होंगे।

अपराह्न कालमें श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा हुई। परिक्रमामें हरिवल्लभजीने गाया – 'कालिन्दी! धीरे बहो, मेरे प्रियतम उतरेंगे पार'। यह बाबाकी रचना है। कालिन्दी-कूलपर बैठी हुई कृष्णप्रिया श्रीराधाजी यमुनाजीसे अनुरोध कर रही हैं मन्द-मन्द बहनेके लिये। जब हरिवल्लभजी पीलू रागमें गा रहे थे तो एक-दो बार बाबाने आलापचारी भी की। इस आलापचारीको सुनकर सभी उत्फुल्ल हो उठे। बहुत दिनोंके बाद बाबाके मुखसे आलापचारी सुननेको मिली थी।

इसी पंक्तिके भावोंको लेकर गोरखपुर विश्वविद्यालयके प्राध्यापक श्रीविश्वम्भरशरणजी पाठकने संस्कृत भाषामें एक गीत लिखा है। वह संस्कृत गीत भी परिक्रमामें गाया गया और बाबा अर्थानुसंधानपूर्वक उस संस्कृत रचनाका आस्वादन ले रहे थे। गीतमें ज्यों ही कोमल भावोंकी ललित अभिव्यक्तिका स्थल आता था, बाबा ग्रीवा डुला-डुलाकर सराहना करते थे। परिक्रमाका वातावरण भी बड़ा आह्लादपूर्ण रहा।

सूर्यास्तके समय भगवान श्रीगिरिराजजीका पुनः विशद रूपसे पूजन हुआ। इस समय भी पूजन महाराजजीने किया। सूर्योदयके समय तो केवल फलों तथा मेवोंका नैवेद्य अर्पित किया गया था, पर इस समय अन्नकूटका निवेदन बृहद् रूपमें था। सभीको भरपूर प्रसाद मिला। बाबाकी भिक्षाके उपरान्त रात्रिमें आठ बजेसे दस बजेतक श्रीराधाकृष्ण मन्दिरमें भजन-कीर्तनका कार्यक्रम था।

यद्यपि दिनभरकी व्यस्तताके कारण महाराजजी पर्याप्त श्रमित हो गये थे, इसके बाद भी महाराजजीने मन्दिरके कार्यक्रममें पधारनेकी कृपा की। महाराजजीकी उपस्थितिसे बात कुछ और ही प्रकारकी बन गयी।

* * * * *

विभिन्न भाव दशाएँ

श्रीराधेश्यामजी मिश्र बाबाको प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदयसे पहले ही एक अध्याय गीता और श्रीविष्णु सहस्रनाम सुनाया करते थे। इसके अतिरिक्त श्रीचैतन्य चरितावली, भक्तमाल आदि-आदि न जाने कितने ग्रन्थ और चरित उन्होंने बाबाको सुनाये होंगे। मिश्रजीके मनमें यह भाव स्फुरित हुआ कि यदि बाबा श्रीरामचरितमानस भी प्रतिदिन सुनते तो कितना अच्छा रहता। मनमें श्रीरामचरितमानस सुनानेका चाव बहुत अधिक था, परन्तु उन्होंने कभी भी यह इच्छा व्यक्त नहीं की। थोड़े ही दिन बीते होंगे कि बाबाने कहा – हे मिसिर! गीताकी तरह रोज रामायण भी सुना दिया करो, श्रीरामचरितमानसका एक मासिक विश्राम प्रतिदिन।

यह तो मिश्रजीके मनकी चाही हुई बात थी ही। मिश्रजीका मन आनन्दसे भर गया। अब वे बाबाको श्रीरामचरितमानस प्रतिदिन प्रातःकाल सुनाने लगे। श्रीरामचरितमानसको सुनते समय बाबाकी जो भावदशा बनती, वह देखने योग्य ही होती। बाबाकी उन भावदशाओंका चित्रण सहज नहीं है। श्रीरामचरितमानसके आरम्भमें श्रीशिवचरितका वर्णन है। श्रीशिवचरितको सुनते समय बाबा भगवान शंकरके भावमें निमग्न रहते। शंकरभावमें निमग्न बाबाको ऐसा लगता कि गोस्वामीजी मेरी ही कथाका वर्णन कर रहे हैं। जब दशरथ चरित आता, तब बाबा दशरथ-भावमें निमग्न हो जाते और बाबा ऐसा अनुभव करते कि मैं अपने वत्स श्रीरामभद्रका विवाह करानेके लिये बारात लेकर अयोध्यासे जनकपुर जा रहा हूँ। जब विवाहका प्रसंग आता तो ऐसा लगता कि बाबा मिथिलाके श्रीजनकराज हैं और दूल्हा रामका पैर पूज रहे हैं। विवाह हो जानेके बाद बाबा श्रीराम भावमें प्रतिष्ठित हो जाते और कहने लगते – श्रीजनकजी मेरे श्वसुर हैं।

ऐसा नहीं सोचना चाहिये कि उन-उन भाव-दशाओंमें निमग्न बाबाके श्रीमुखसे जो उद्‌गार फूट पड़ते थे, उन-उन उद्‌गारोंके व्यक्त हो जानेके बाद

उनकी भावदशा बदल जाया करती थी। कभी-कभी उसी भावमें बाबा कई घण्टेतक डूबे रहते। मिथिलामें विवाह प्रसंग चल रहा था। बाबा दूल्हा रामके भावमें निमग्न थे। बाबाकी भाव-निमग्नताको देख-देख करके मिश्रजी भी बड़े विभोर हो रहे थे। भाव विभोर मिश्रजीने बाबासे कहा – आज आपका विवाह हुआ है आप सबको मिठाई खिलाइये।

बाबा पूर्ण उल्लासके स्वरमें कहने लगे – हाँ, हाँ, सब लोग खाओ। खूब खाओ। आज विवाह हुआ है। देखो, देखो, जनकपुरमें कैसी खुशियाँ छायी हुई हैं। जीमनवारमें जो मिठाई खायी, उसका स्वाद अभीतक बना हुआ है।

अयोध्याकाण्डमें जब श्रीदशरथजीके निधनका प्रसंग आता तो बाबाके आँखोंके आँसू सूखते ही नहीं थे। क्या-क्या बतलाया और क्या-क्या लिखा जाय? श्रीरामचरितमानसके पाठके समय कथा-प्रवाहमें जब जैसा प्रसंग आता, बाबाको यह लगता कि यह मेरा ही वर्णन हो रहा है। कभी केवट-भावमें, कभी भारद्वाज-भावमें, कभी वाल्मीकि-भावमें बाबा डूबे रहते। जब श्रीसुमन्त्रजी रिक्त रथ लेकर अयोध्या लौटते तो उस समय ऐसा लगता कि बाबा ही लौट रहे हैं और श्रीसुमन्त्रजीके आ जानेके बाद श्रीराम विरहमें श्रीदशरथजी जब अपने प्राणोंका परित्याग करते और इसका करुण प्रसंग सुनते, तब बाबाकी दशा कल्पनातीत रूपसे बड़ी विचित्र हो जाती। उस समय ऐसा लगता मानो चौकीपर विराजे हुए बाबा अपने आसनपरसे नीचे भूमिपर गिर पड़ेंगे। बाबाकी जैसी दारुण दशा होती, उसको देखकर श्रीरामचरितमानसका पाठ सुना पाना बन नहीं पाता और मिश्रजीको विवश होकर पाठको वहींपर विश्राम दे देना पड़ता। यह बात केवल एक बारकी नहीं है। बाबाको मिश्रजीने श्रीरामचरितमानस आरम्भसे अन्ततक कई बार सुनाया है और जब-जब पाठके मध्य श्रीदशरथ निधनका प्रसंग आता, तब-तब भावाधिक्यके कारण बाबाकी विकल स्थिति बहुत विचित्र हो जाती। हम और आप अनुमान नहीं लगा सकते कि वह स्थिति कितनी विकट और विशिष्ट हो जाया करती थी।

श्रीभरतचरित तो बाबाका प्राण था। श्रीभरतचरितके आरम्भ होते ही वे अत्यन्त भाव विभोर हो जाते। 'पुलक सरीर बिलोचन बारी' और 'मगन सनेहँ देह सुधि नाहीं' का प्रत्यक्ष उदाहरण मिश्रजीके सामने मूर्तिमान रहता। श्रीरामचरितमानसमें आया है – 'भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जल अलि गति जैसी।।' और बाबाकी सहज भावदशाको देखकर कुछ-कुछ अनुमान

लगाया जा सकता है कि त्रेतायुगमें भाई भरतकी भावमयता कैसी रही होगी! मानसके अयोध्याकाण्डका पाठ होते समय कभी दशरथ-भावमें, कभी भरत-भावमें, कभी राम-भावमें, कभी जनक-भावमें उनकी लोकोत्तर दशा देखते ही बनती थी। 'बनइ न कहत प्रीति अधिकाई।'

जब अरण्यकाण्डमें श्रीसुतीक्ष्ण प्रसंग आता, तब बाबा ऐसे थिरकते रहते मानो भगवान श्रीरामके दर्शनके लिये भागे चले जा रहे हों और बार-बार कह रहे हों – 'रामचन्द्र चन्द्र तू चकोर मोहि कीजिये'। माँ शबरीका प्रसंग आते ही बाबा मिश्रजीसे पूछते –नवधा भक्तिमें पाँचवाँ भजन मन्त्र-जप बतलाया गया है। अब बतलाओ, श्रीरघुनाथजीने माँ शबरीको जप करनेके लिये कौन-सा मन्त्र बतलाया था।

मिश्रजीको ऐसे रसमय अवसरोंपर मौन रहना ही प्रिय लगता था। पूछे जानेपर मिश्रजी चुपचाप और एकटक बाबाकी ओर देखने लगते। फिर बाबा स्वयं ही बोल पड़ते – राम राम राम राम। हे मिसिर! यही मन्त्र है। इसी मन्त्रका जप करनेके लिये श्रीरघुनाथजीने कहा था।

माँ शबरीके प्रसंगके तुरन्त बाद श्रीनारद प्रसंग आता है और देवर्षि नारदने इसी वरदानकी याचना की है।

'राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका।।'

पाठके समय इस चौपाईके आते ही बाबा बोल पड़ते – देखो मिसिर! देखो, श्रीरामनाम ही महामंत्र है और इसकी पुष्टि देवर्षि नारदके इस प्रसंग द्वारा भी हो रही है।

सुन्दरकाण्डको बाबा हनुमानकाण्ड कहा करते थे। बाबाकी मान्यता सदैव यही रही है कि इस काण्डमें रामभक्त श्रीहनुमानजी महाराजके पावन और यशस्वी चरित्रका अति सुन्दर रूपमें वर्णन हुआ है और इसीलिये मानस रचयिता गोस्वामी तुलसीदासजीने इसका नाम सुन्दरकाण्ड रखा है। श्रीहनुमानजी महाराज तो अत्यन्त विनम्र और निरभिमानी थे, अतः गोस्वामीजीको 'पवनसुतकाण्ड' नाम नहीं रखने दिया।

अब प्रसंगानुसार एक दृश्यकी ओर इंगित करना आवश्यक तो नहीं है, परन्तु अनावश्यक भी नहीं लग रहा है। लंका दहनके उपरान्त वहाँसे वापस आकर श्रीहनुमानजीने भगवान श्रीरामको अशोक वाटिकाकी वन्दिनी एवं विरह-व्यथासे पीड़ित भगवती सीताका संदेश दिया और प्रेमाकुल-हर्षाकुल हनुमानजी

प्रभु श्रीरामके युगल चरणकमलोंपर गिर पड़े। सलिलित नयन और पुलकित वदन श्रीहनुमानजीका वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं –

बार बार प्रभु चहइ उठावा।
प्रेम मगन तेहि उठब न भावा।।
प्रभु कर पंकज कपि के सीसा।
सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा।।

यह प्रसंग आते ही मिश्रजी अपने मनमें स्वयं ही स्वयंसे कहते – अरे नराधम! इस समय तू बन जा थोड़ी देरके लिये हनुमान। हाँ, बनावटी हनुमान बन जा और पकड़ ले इन बाबाके समर्थ युगल चरण, जो नर रूपमें भगवान श्रीरामचन्द्रजी ही हैं।

इधर तो मिश्रजीके मनमें यह मधुर भावकुता उभरी और उधर तुरन्त उन्होंने अपना मस्तक चौकीपर बैठे हुए बाबाके श्रीचरणकमलोंपर रख दिया। मिश्रजीके सौभाग्यकी सीमा नहीं। बाबा उनके मस्तकपर अपना दक्षिण करकमल फेरने लगे। क्या ही भावपूर्ण वह दृश्य रहा होगा!

लंकाकाण्डमें जब भगवान श्रीरामचन्द्रजीने भोले बाबा भगवान श्रीरामेश्वरजीकी स्थापना की, तब ऐसा लगता मानो वह स्थापना बाबाके द्वारा हो रही है। मेघनादकी वीरघातिनी शक्तिसे आहत भाई श्रीलक्ष्मणका वर्णन आते ही बाबाको ऐसा लगता कि वह शक्ति मेरे हृदयमें शूलके समान भीषण रूपसे चुभ रही है। जब उत्तरकाण्डका पाठ चलता, तब प्रतीक्षा व्याकुल श्रीभरतजीका विगलित-विकलित अन्तर बाबाको पंक्ति-प्रति-पंक्ति गलाता-बहाता-रुलाता रहता और इस रोदनका विराम होता तब, जब श्रीराम-भरत-मिलनका प्रसंग आता। उत्तरकाण्डका उत्तरांश आते ही बाबा नितान्त गम्भीर हो जाते।

इस उत्तरांशमें भक्त शिरोमणि काकभुशुण्डिजीके श्रीमुखसे श्रीरामभक्तिकी श्रेष्ठताका जैसा प्रतिपादन हुआ है, वह वर्णन वस्तुतः बाबाकी निजी मान्यता ही है। भक्ति-ज्ञान- कर्म-त्याग-सदाचार आदि-आदिके सम्बन्धमें जिन तत्त्व-रहस्य-प्रभाव-महिमा आदि-आदिका विवेचन और उद्घाटन किया गया है, वे यथार्थतः बाबाके जीवनके निर्णीत और अनुभूत सत्य हैं। ऐसे अवसरपर बाबाका गम्भीर होकर अन्तर्मुखी हो जाना नितान्त स्वाभाविक है।

* * * * *

एक प्रेरणाप्रद पत्र

एक स्वजनने बाबाके नाम पत्र भेजा और बड़ी भावभरी रीतिसे निवेदन किया कि जीवनके निर्माणके लिये कुछ बतलानेकी कृपा करें। इसके उत्तरमें बाबाने जो लिखवाया, उसको नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

"भगवत्कृपा प्राणी मात्रके ऊपर निरन्तर बरस रही है। जीवका इस विश्वमें एक मात्र कर्तव्य यह है कि वह उस कृपाका आदर करके अपने जीवनको इस अजस्र धारामें निमज्जित कर दे। पूर्व-जन्मके कर्मोंसे निर्मित प्रारब्ध तो संसार-चक्रको चलाता ही रहता है, भविष्यमें चलाता भी रहेगा। उसकी ओर आसक्ति तथा उसके लिये चिन्ता करना तो अपने अमूल्य जीवनको व्यर्थ करना ही है।

भगवानकी कृपासे जो मानव-जीवन मिला है, उसको व्यर्थ करनेवाला तो आत्म-हन्ता ही है। चकोरके समान प्रियका एकान्त दर्शन करना, भ्रमरके समान उनके प्रीति-रसका निरन्तर पान करना और जलसे बाहर निकली हुई मछलीके समान प्रियके वियोगमें असीम व्यथाका अनुभव करना, यह इस जीवनका परम आदर्श है।

मेरी मंगल कामना है कि आपका चित्त निरन्तर भगवानका वासस्थल बन जाय, आपकी जिह्वा सदा उनका नाम संकीर्तन करती रहे, आपके मनमें प्यारेकी छवि निरन्तर अंकित रहे और आपकी आँखोंमें सदा बसे रहें दोउ चंद।"

* * * * *

भाव-देहकी साधना

व्रजभावके कुछ पदोंका मैंने संग्रह कर रखा था। बाबा उन पदोंको आदरणीय श्रीहरिवल्लभजी कीर्तनियासे गवाया करते थे। गवा-गवा करके उनपर रागका नाम लिखवाया करते थे। जब एक राग पसन्द नहीं आती तो उसी पदको किसी अन्य रागमें गानेके लिये वे उनको कहा करते थे। हरिवल्लभजी दूसरी रागमें गाने लगते थे। फिर वह राग पसन्द आती तो

रागका नाम पदके ऊपर बाबाके निर्देशानुसार मैं लिख लिया करता था। जिज्ञासावशात् मैं बाबासे पूछ बैठा – आप यह कैसे निश्चित करते हैं कि इस पदको अमुक रागमें गाना चाहिये?

बाबाने बड़े प्यार पूर्वक समझाया – यह तो बड़ी सीधी सी बात है। जिस रागसे मनमें भाव उद्दीप्त हो उठे, वह राग उस पदके लिये उपयुक्त है। जब एक रागसे मन 'भीतर' प्रवेश नहीं करता तो मैं किसी अन्य रागमें गानेके लिये इनसे कहता हूँ। मुख्य उद्देश्य है मनका श्रीप्रिया-प्रियतमके लीला-सिन्धुमें निमग्न हो जाना। यही कारण है भिन्न-भिन्न कालमें और भिन्न-भिन्न भावोंके लिये शास्त्रमें भिन्न-भिन्न रागोंका विधान है।

बाबाके इस उत्तरसे बड़ा समाधान मिला। बाबाको अति प्रसन्न देखकर उनसे एक और जिज्ञासा व्यक्त करनेका साहस कर बैठा। एक ओर कुटियाका नितान्त एकान्त और दूसरी ओर उनकी परम वत्सलताने ही यह साहस प्रदान किया। मैंने बड़े विनीत भावसे पूछा – बाबा! भाव-साधना किस प्रकार की जाती है?

बाबा प्यारपूर्वक बतलाने लगे – भाव-साधना भाव-देहसे की जाती है। स्वयं यह भावना करे, कल्पनाके आधारपर यह भावना करे कि मैं चौदह-पन्द्रह वर्षकी एक किशोरी बालिका हूँ। अगोंपर सुन्दर परिधान है। आभूषण भी यथास्थान सुशोभित हैं। इस प्रकार अपने भाव-देहकी भावना करके प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-माधवकी सेवामें स्वयंको नियुक्त करे। भिन्न-भिन्न समयपर विविध प्रकारकी सेवा करे, मानसिक सेवा। यह भाव-साधना सतत चलती रहे। यदि साधना निरन्तर चलती रही तो समय पाकर यह भाव-देह सिद्ध हो जाती है।

बाबाने सावधान करनेके लिये यह भी बतलाया – श्रीप्रिया-प्रियतमकी यह भावमयी लीला परम दिव्य है और सर्वथा लोकोत्तर है। यह लीला सांसारिक मानवी-मानवकी नहीं है, अपितु है साक्षात् भगवती श्रीराधा और भगवान श्रीकृष्णकी। श्रीराधामाधव समग्र ऐश्वर्य, समग्र धर्म, समग्र श्री, समग्र ज्ञान, समग्र वैराग्य एवं समग्र यशके साक्षात्स्वरूप हैं। उनका दिव्य वपु सच्चिदानन्दमय हैं। उनकी दिव्य देह नित्य रहनेवाली नित्य चेतन एवं नित्य आनन्दस्वरूप है। सघन

प्रेम-पदार्थसे निर्मित उनके सच्चिदानन्दमय देहमें देही, देहका भेद नहीं है। उनका दिव्य वपु अस्थि-चर्म, रक्त-माँस, मल-मूत्र, रज-वीर्य, प्रारब्ध-फलभोग आदि-आदिसे सर्वथा रहित है। वे सर्वत्र सर्वदा सर्वांशमें तत्सुख-सुखिता भावसे भावित रहते हैं। इसी प्रकार भगवल्लीलामें जो देश है, काल है और सखी-मञ्जरी आदि परिकर हैं, वे सभी सच्चिदानन्दमय होते हैं।

बाबाने जो बतलाया, उसीको संक्षेपमें लिखा गया हैं। यहाँ एक बातका उल्लेख करना आवश्यक लग रहा है। ये सारी बातें एक ही बार एक ही बैठकमें नहीं हुई। किसी दिन कुछ बात हुई और किसी दिन कुछ बात हुई। विषयसे सम्बन्धित होनेके कारण भिन्न-भिन्न अवसरोंपर हुई इन बातोंको अब एक साथ लिख लिया गया है। बाबाने यह सब चर्चा की, यह मुझ साधारण व्यक्तिका सौभाग्य था। फिर तो एक दिन एक सुन्दर लीला भी प्राप्त हो गयी कि किस प्रकार भाव-देहकी भावना और लीलाका चिन्तन करना चाहिये। उस लीलाका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

मैं तेरह वर्षसे कुछ बड़ी एक मंजरी हूँ। सहसा मेरी आँखें खुल गयी हैं और ऐसा अनुभव मैं कर रही हूँ कि आज ब्राह्म मुहूर्तके बाद भी मैं कुछ अधिक देरतक सो गयी थी। अतएव शीघ्र-से-शीघ्र मैं उठते ही स्नान करनेके लिये श्रीयमुना-तटपर आयी हूँ अथवा श्रीराधाकुण्डके कगारपर खड़ी हूँ। भगवती पौर्णमासी देवीने मुझे किसी दिन कहा था कि देख! तू कुछ दिनोंतक वेणीकी रचना मत करना, अतएव अधिकांश समय मैं उन्मुक्त केशी ही रहती हूँ। मैं नहीं जानती, मेरे केशोंमेंसे एक अत्यधिक अप्रतिम सौरभ क्यों निःसृत होता रहता है। मैं ऐसा कोई तेल भी नहीं लगाती, तब भी इतने सुचिक्कण मेरे केश क्यों बने रहते हैं। जो हो, मैं स्नान कर रही हूँ और मेरे केश श्रीराधाकुण्डके जलपर अथवा यमुनाके जल-प्रवाहपर संतरण कर रहे हैं और मेरे केशोंसे उस समय भी एक अद्‌भुत सौरभ निकल रहा है, जो कि कमलके फूले हुए सुमनोंके सौरभको फीका कर रहा है।

स्नान करके मैं ऊपर तटपर चली आयी हूँ। वहाँ एक बड़ा सुन्दर नीले रंगका घाघरा पड़ा है, उसको मैं पहन लेती हूँ, किंतु उसके पहले

ही गीले वस्त्रको छोड़कर मैं एक नीले रंगका जाँघिया (कच्छा) पहन चुकी होती हूँ। उस कच्छेमें भी किसी अनुपम इत्रका सौरभ अनुभूत हो रहा है। वक्षःस्थलकी उत्तुंगताका आरम्भ तो हो गया है, परन्तु स्पष्ट परिलक्षित सबके द्वारा वह हो ही जाय, ऐसा नहीं है, परन्तु सबके लिये समान यह नियम भी नहीं है। मैं एक अरुण वर्णकी कंचुकी धारण कर लेती हूँ। स्नान करते समयके अपने गीले वस्त्रोंको निचोड़कर, अब मैं अपने केशोंको एक कँगही लेकर केवल तीन बार केशोंपर फेरती हूँ और इतनेमें ही वे सब सुलझ जाते हैं। कस्तूरी कुंकुम एवं केशर मिश्रित विलेपनसे एक गोल विन्दुका तिलक भ्रू-मध्यमें लगा लेती हूँ। मेरे अधरोंमें अरुणिमा तो सहज व्यक्त है ही, परन्तु फिर भी अर्चनाके प्रसाद रूपमें अथवा कृपा-प्रसादके रूपमें प्राप्त ताम्बूल भी मैं प्रायः प्रतिदिन प्रातःकाल ही सेवन कर लेती हूँ।

झड़का करके नीली ओढ़नीकी सलवट दूर कर अब मैं उसे ओढ़ लेती हूँ। कलाईमें दोनों ओर दो स्वर्ण निर्मित वलय नित्य धारण किये रहती हूँ और उनके मध्यमें पतली-पतली अरुणाभ चूड़ियाँ हैं। कभी-कभी मेरी चूड़ियाँ झनक भी उठती हैं।

राधा बहिनने मुझे सुरभित विलेपन प्रस्तुत करनेकी आज्ञा दी थी। अब मैं केशर कस्तूरी एवं कुंकुम इन तीनोंको चन्दनकी बटियासे एक बड़ी सिलपर, अपने शृंगार धारण करनेवाले कक्षसे बाहर आकर अलिन्दमें बैठकर पीस रही हूँ।

अचानक प्रियतम श्रीकृष्ण आ जाते हैं। उनके मुखपर उनके सिरका काला कुञ्चित केश जाल मोर मुकुटके द्वारा संयत रहनेपर भी भहरा-भहरा करके आ ही जाता है, जिसे वे गर्दन हिला-हिला करके संयतकी मुद्रा दे देते हैं। अधरोंपर मन्द मुस्कान है। कुटिल भृकुटि है। कटिमें पीत वसन है। झलमलाता हुआ पीताम्बर कंधोंपर शोभायमान है। दोनों कानोंमें कुण्डल लटक रहे हैं, उनकी आभासे गोल-गोल कपोल दमक रहे हैं। विशाल नेत्र हैं। वे तिरछी चितवनसे मेरी ओर देख रहे हैं। किशोर वय है। किशोरीकी अपेक्षा प्रियतम श्रीकृष्णकी ऊँचाई चार-छः अंगुल अधिक है। माथेपर मृगमदका तिलक है। नाकमें बुलाक पहने हैं। हाथमें मुरली है। गलेमें वनमाला सुशोभित है। दोनों कलाइयोंमें कंकण हैं।

विशाल भुजाओंमें बाजूबन्द हैं। कटिमें करधनी है। वक्षःस्थलमें कौस्तुभ मणि सुशोभित है। अधर और ओष्ठ अरुण हैं। चरणोंमें नुपूर हैं। मन्द मन्थर गतिसे चलकर आते हुए उनको देखकर मैं संयत होकर बैठ जाती हूँ। विलेपन प्रस्तुत करना भी स्थगित कर देती हूँ। वे मुस्कुरा करके पूछ रहे हैं – तुमने विलेपन पीसना क्यों छोड़ दिया?

मै केवल मुस्कुरा देती हूँ। प्रियतम श्रीकृष्ण फिर पूछते हैं – मैं घिस दूँ क्या?

मैं उत्तर देती हूँ – तुम्हारा स्वभाव बड़ा चंचल है। तुम घिस सकोगे नहीं और मुझे जल्दी-से-जल्दी घिसकर राधा बहिनके समक्ष प्रस्तुत होना है।

प्रियतम श्रीकृष्णके मेरे सामने बैठ जाते हैं और कहते हैं – इतना अधिक विलेपन क्या होगा?

मैं उत्तर देती हूँ – इसका उत्तर तो तुम्हें राधा बहिन ही देंगी।

अविलम्ब बहिन राधा किशोरी भी उसी स्थलपर उपस्थित हो जाती हैं। उसका नीला घाघरा है। उसके नीचे नीला कच्छा है। कमरसे ऊपर उदर-देशको निरावरण रखते हुए लाल रंगकी कंचुकी है, जिसमें हर समय विभिन्न रंगोंका प्रकाश होता रहता है। कहनेके लिये उसे अरुण वर्णकी कंचुकी कही जा सकती है, किन्तु वही कंचुकी लीलाके अनुरूप नारंग वर्ण, पीत वर्ण, हरित वर्ण, आसमानी वर्ण, नील वर्ण, वैगनी वर्ण, इतनी आभाएँ बदलती रहती है। गलेमें पाँच तरहके हार रहते ही हैं – सोनेका, हीरेका, नीलमका, मोतीका और सुमनका हार। नाकमें बुलाक हरदम रहती है, किसी-किसी दिन नथ भी अवश्य रहती है। नथमें एक डोरी लगी रहती है, वह नीलाभ झाँई लिये होती है और कर्ण-कुण्डलोंको छूती रहती है। कानोंमें एक विचित्र तरहका झूमका है, जो कि क्षण-क्षणमें बड़ा-छोटा होता रहता है। चंद्रिका किसी समय रहती है और किसी समय अन्तर्धान हो जाती है। हाथोंकी दसों अँगुलियोंमें अँगूठी हैं। पैरोंमें भी दसों अँगुलियोंमें बिछिया और अँगूठियाँ हैं, नूपुर भी है। स्वर्णके पीताभ वर्ण वलय दोनों हाथोंमें दो-दो रहते हैं। उनके बीचमें चूड़ियाँ हैं अरुणाभ वर्णकी। बाजूबन्द भुजाओंमें हैं। कटिदेशवाली किंकणी कंकण और नूपुर झनक रहे हैं। मधुर मुस्कान समन्वित लाल-लाल अधर और

ओष्ठ हैं। वे आते ही प्रियतम श्रीकृष्णसे कहती हैं – तुम्हारी आदत बहुत बुरी है। तुम कोई भी काम किसीको ठीकसे करने देते ही नहीं।

मैं राधा बहिनकी ओर देखकर बोल उठती हूँ – देखो बहिन! ये विलेपन नहीं दे रहे हैं। मैं क्या करूँ?

उत्तर देती हैं राधा बहिन ही – देख! ये ऐसे मानेंगे नहीं। इनके लिये कोई नैवेद्य सामग्री लेकर आ। साथ ही अन्य सहचारियोंको भी बुला ला।

क्षण बीतते-न-बीतते दस-बारह सहचरियाँ हाथोंमें विभिन्न प्रकारकी नैवेद्य सामग्री लिये हुए उपस्थित हो जाती हैं। नैवेद्य सामग्री है पायस, अत्यन्त सुरभित मोदक (लड्डू), कुछ नमकीन दाल-मोठ आदि भी हैं। गुलाबजामुन, चन्द्रकला, इमरती आदि भी हैं। सुहाली, भुजिया, दहीबड़ा, कचौड़ी आदि भी है। उसे मैं प्रत्येकसे लेकर एक बड़े सोनेके थालमें सजा देती हूँ, परन्तु विचित्र बात, जिसे स्वयं मैं भी नहीं समझ पाती हूँ कि ऐसा कैसे हो जाता है, प्रत्येक वस्तु एक साथ ही दोनोंके समक्ष आ जाती है। ग्रास लेनेके लिये वस्तुकी ओर हाथ बढ़ानेकी आवश्यकता उन्हें नहीं होती । मात्र उठाना भर ही पड़ता है। दोनों परस्पर एक दूसरेके मुखमें ग्रास दे रहे हैं और साथ ही चल रहा है पवित्र एवं मधुर विनोद। बीचमें कटोरी लेकर कभी-कभी अमृतके समान निर्मल एवं सुमिष्ट जलकी घूँट भी परस्पर पिलाते हैं।

अब बहिन राधाका संकेत पाकर मैं थाल हटा लेती हूँ और हाथ पोंछकर ताम्बूल सामने रख देती हूँ। दोनों एक-एक ताम्बूल उठाकर और दाँतोंसे तनिक-सा तोड़कर खाने लगते हैं। सहसा नित्य निकुञ्जेश्वर प्राणप्रियतम श्रीकृष्ण अपने मुखका अर्ध चर्वित ताम्बूल मेरे मुखमें डाल देते हैं और किशोरीके अधरामृत-सिक्त ताम्बूलको छीनकर स्वयं खाने लगते हैं।

राधा राधा राधा राधा

* * * * *

चरण-पादुकाका वन्दन

बाबूजीका जन्म-शताब्दी उत्सव अपने देश भारतके विभिन्न भागोंमें ५ अक्टूबर १९९१ से २३ सितम्बर १९९२ तक वर्षभर मनाया गया। भारतकी विभिन्न दिशाओंमें स्थान-स्थानपर एक वर्षतक उत्सवोंकी मालाका उल्लास छाया रहा। शताब्दी उत्सवका कभी यह अथवा कभी वह कार्यक्रम होता रहा कभी इस शहरमें तो कभी उस गाँवमें। अन्यत्र किसी एक ग्राम अथवा नगरमें तो एक वर्षकी अवधिके भीतर एक या दो बार ही कोई कार्यक्रम आयोजित हुआ, परन्तु यहाँ गीतावाटिकामें उत्सवानन्दका उल्लासपूर्ण प्रवाह निरन्तर ही बहता रहा। यहाँ कोई-न-कोई आयोजन किसी-न-किसी रूपमें वर्षभर होता रहा और वर्ष पर्यन्त चलनेवाले इन विभिन्न कार्यक्रमोंका शुभारम्भ हुआ श्रीमद्भागवत महापुराणकी परम पावनी सप्ताह-कथासे। इसीके साथ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि सांवत्सरिक उत्सवका शुभारम्भ यदि श्रीमद्भागवतकी सप्ताह कथासे हुआ तो इसकी सम्पन्नता श्रीरामचरितमानसकी नवाह्न कथासे हुई।

इसमें भी एक अति महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन दोनों कथाओंके अवसरपर व्यासपीठको सुशोभित किया रामानन्दाचार्य प्रज्ञाचक्षु परम पूज्य श्रीरामभद्राचार्यजी महाराजने। प्रज्ञाचक्षु पूज्य श्रीमहाराजजीने एक बार कहा था – पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके सम्पूर्ण शताब्दी उत्सवको श्रीकृष्ण-कथा और श्रीराम-कथाके जिस आयोजन द्वारा सम्पुटित किया गया, यह सर्वथा श्रीभाईजीके व्यक्तित्वके अनुरूप हुआ है। श्रीभाईजीके जीवनमें भगवान श्रीकृष्ण और भगवान श्रीरामका अद्‌भुत समन्वय है। श्रीभाईजीके विचारमें यदि भगवान श्रीकृष्णका दर्शन है तो उनके आचारमें भगवान श्रीरामका वर्तन है। भाव-समाधिकी स्थितिमें यन्त्र-यन्त्री-भावापन्न होकर स्वयंको यन्त्र मानते हुए जहाँ उन्होंने अपने आपको भगवान श्रीकृष्णके चरणोंपर अर्पित कर दिया है, वहीं उन्होंने लोक कल्याणकी भावनासे भावित होकर भगवान श्रीरामके गुणोद्‌घाटक श्रीरामचरितमानसकी सुन्दर टीकाके लेखन द्वारा जग-हित-निरत हृदयका परिचय दिया है। माधव और राघवके यथार्थ तत्त्वका व्यावहारिक रूप श्रीभाईजीके जीवनमें देखनेको मिलता है।

शताब्दी उत्सवके शुभारम्भके समय श्रीमद्भागवत महापुराणकी

जब कथा हुई थी, उस अवधिकी एक विशिष्ट घटनाका यहाँ उल्लेख करना है। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि इस भावपूर्ण कथाको कहनेके लिये प्रज्ञाचक्षु पूज्य श्रीरामभद्राचार्यजी महाराजका शुभागमन हुआ था। श्रीमहाराजजीने मन-ही-मन निश्चय कर रखा था कि कथा-मण्डपमें जानेसे पूर्व मुझे श्रीराधा बाबाका दर्शन करना है। बाबाकी कुटियापर जाते समय उन्होंने पहले बाबूजीकी समाधिको प्रणाम किया। इसके बाद उन्होंने श्रीगिरिराजजीको प्रणाम किया। प्रणाम करके उन्होंने श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगायी, जिसकी परिक्रमा बाबा नित्य लगाया करते थे।

जब महाराजजी परिक्रमा लगा रहे थे, परिक्रमा लगानेका वह दृश्य बड़ा हृदयस्पर्शी था। परिक्रमा लगाते समय श्रीमहाराजजी श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित श्लोकको गा-गा करके बोल रहे थे –

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्
पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः।।
(श्रीमद्भागवत – १०/२१/१८)

[अर्थात् अरी गोपियों! यह गिरिराज गोवर्धन तो भगवानके भक्तोंमें बहुत ही श्रेष्ठ है। धन्य हैं इसके भाग्य! देखती नहीं हो, हमारे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण और नयनाभिराम बलरामके चरणकमलोंका स्पर्श प्राप्त करके यह इतना आनन्दित रहता है! इसके भाग्यकी सराहना कौन करे! यह तो उन दोनोंका, ग्वालबालों और गौओंका बड़ा ही सत्कार करता है। स्नान-पानके लिये झरनोंका जल देता है। गौओंके लिये सुन्दर हरी-हरी घास प्रस्तुत करता है। विश्राम करनेके लिये कन्दराएँ और खानेके लिये कन्द-मूल-फल देता है। वास्तवमें यह धन्य है।]

इस भावपूर्ण श्लोकको भावपूर्ण रीतिसे गायन करते हुए श्रीमहाराजजी द्वारा परिक्रमाका लगाया जाना बड़ा ही प्रिय लग रहा था। श्लोकको सुस्वर ढंगसे गाते-गाते बीचमें ही उन्होंने बड़े उच्च स्वरसे बोलकर कहा – यह गीतावाटिका तो वस्तुतः वृन्दाकानन ही है।

श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा लगा करके श्रीमहाराजजी बाबाकी कुटियाकी ओर अग्रसर हुए। बाबाने देखा कि मेरी ओर श्रीमहाराजजी चले आ रहे हैं।

अपने गैरिक बिस्तरसे उठकर और करबद्ध खड़े होकर उन्होंने श्रीमहाराजजीका भावभरा स्वागत किया। दो संतोंकी पारस्परिक प्रणतिका वह सरस दृश्य अध्यात्म-राज्यका एक स्मरणीय भाव-चित्र है। आज भी उसकी स्मृतिसे भावोद्दीपन हो उठता है। बाबाको वन्दन करके महाराजजी कथा-मण्डपमें पधारे। अब तो यह नित्यका क्रम बन गया कि कथा-मण्डपमें जानेके पूर्व श्रीमहाराजजी प्रतिदिन बाबाकी कुटियापर आया करते थे और वे आया करते थे एक मात्र अपना भावभरा वन्दन निवेदित करनेके लिये। ज्यों ही श्रीमहाराजजी वन्दन करते, त्यों ही बाबाके श्रीमुखसे स्नेह-भरे सम्मान-सने भावोद्‌गार झरने लगते थे। श्रीमहाराजजीको वन्दन-विनीत देखकर बाबाने वन्दन करते हुए कहा – जै जै सरकारकी, जै जै कृपानिधानकी।

स्वयं श्रीराधाभावमें निमग्न रहते हुए भी बाबाने प्रति-वन्दन करते हुए एक दिन कहा कि मेरे प्राणोंके मालिककी जय हो। फिर दूसरे दिन बाबाने प्रति-वन्दन करते हुए कहा कि जै जै श्रीसीताराम। फिर अगले दिन उन्होंने कहा कि भावोंके सन्धिपर प्राणोंका अनुसरण करनेवाले महामहिमकी जय हो।

इन भावभरे उद्‌गारोंको सुनकर श्रीमहाराजजीका मञ्जुल-मञ्जुल हृदय सदैव और सतत मूक अभिनन्दन किया करता था। एक दिन श्रीमहाराजजीने बाबासे कहा – आज सायंकाल मेरे मुन्ना सरकार राघव आपके साथ खेलना चाहते हैं।

इस वाक्यको सुनकर बाबाके आह्लादकी सीमा नहीं थी। बाबाने विहसते-विहसते ललित और मधुर स्वरमें कहा – मैं आऊँगा, अवश्य आऊँगा। फिर क्या कहना ? बस, आपकी चरण धूलि मिल जाय, फिर हमें क्या कहना है ! मैं कभी न तो कुछ था और न हूँ, पर आपकी कृपासे कुछ हो जाऊँगा जरूर !

बाबाके इन भक्तिपूर्ण उद्‌गारोंको सुनकर श्रीमहाराजजीने कुछ अन्तरंग व्यक्तियोंके मध्य एकान्तके क्षणोंमें जो अभिमत व्यक्त किया, उसका एक विशेष महत्त्व है। आजकल होता यह था कि बातचीत करते-करते बाबा कभी-कभी ऐसा असम्बद्ध संभाषण करने लगते थे मानो पिछली बातकी अगली बातसे कोई सम्बद्धता न हो। पूर्वापर-सम्बन्ध-रहित असम्बद्ध चर्चाके आधारपर कई लोग बाबापर हल्की टिप्पणी कर दिया करते थे। ऐसे लोगोंकी आलोचना करते हुए श्रीमहाराजजीने कहा – जो लोग बाबाके असम्बद्ध संभाषणके आधारपर यह कहते हैं कि उनकी स्मृति-शक्ति क्षीण या विलुप्त हो गयी है, वे लोग अपनी

मूर्खता और अपने अज्ञानका परिचय दे रहे हैं। क्या स्मृति-विलुप्त व्यक्ति ऐसे सुन्दर और भावपूर्ण उद्‌गार व्यक्त कर सकता है? सच बात यह है कि उन्होंने अपने आपको जगतसे छिपाये रखनेके लिये स्वयंपर एक आवरण डाल रखा है। बाबा तो जगतसे उपराम हैं, जगदीशसे नहीं।

* * *

एक दिन तो विचित्र घटना घटित हो गयी। श्रीरामान्द-सम्प्रदाय-पीठाधिपति होनेके कारण पूज्य श्रीरामभद्राचार्यजी महाराजके साथ आद्य-सम्प्रदायाचार्य नित्य-वन्द्य श्रीरामानन्दजी महाराजकी परम पावन युगल चरण पादुका चला करती थीं। ये चरण-पादुकाएँ एक सुन्दर सिंहासनपर विराजित रहती थीं और एक भक्त उनको अपने शीशपर रखकर साथ-साथ चला करता था। जब श्रीमहाराजजी कथा-मण्डपमें आकर विराजते, तब व्यास-पीठके समक्ष इन चरण-पादुकाओंको भी विराजित कर दिया जाता था। मर्यादा यह है कि कथाके आरम्भ होनेके पूर्व जब व्यास-पूजन होता है, तभी इन चरण-पादुकाओंका भी अत्यधिक सम्मानपूर्वक पूजन होना चाहिये। गीतावाटिकामें कथारम्भके पूर्व चरण-पादुकाओंका पूजन तो होता था, पर वह साधारण स्तरका था और यह एक प्रमाद हम लोगोंके द्वारा घटित हो रहा था। प्रतिदिन जो भूल प्रमादवशात् घटित हो रही थी, वह श्रीमहाराजजीके ध्यानमें आ गयी, पर शीलवशात् उन्होंने भूलकी ओर संकेत नहीं किया और इस प्रमादके आवर्तमें तीन-चार दिन निकल गये। सम्भवतः घटना पाँचवें दिनकी है। श्रीमहाराजजी कथा-मण्डपमें पधारनेके पूर्व बाबाके समक्ष वन्दन निवेदित करनेके लिये गये तो बाबाने उनका बड़ा भावभरा स्वागत किया। श्रीमहाराजजीको आते हुए देखकर वे तुरन्त उठकर खड़े हो गये और उनके समीप आते ही बाबाने उल्लसित स्वरमें कहा – श्रीगुरुदेव भगवानकी जय हो जय हो जय हो। श्रीकरुणावरुणालयकी जय हो जय हो जय हो। आज आपका स्पर्श प्राप्त करके मैं भी पवित्र हो गया।

बाबाका वह उल्लसित स्वर सुनते ही बनता था और देखते ही बनता था उनका प्रफुल्लित मुख। सारे वातावरणमें प्रफुल्लता परिव्याप्त हो रही थी। श्रीमहाराजजीके साथ वन्दनीया बूआजी भी थीं। बूआजी श्रीमहाराजजीकी सहोदरा बहिन हैं। बूआजीने नमन करते हुए बाबासे विनयपूर्वक पूछा – बाबा! क्या मुझे श्रीराधारानीका दर्शन होगा?

बाबाने उसी प्रफुल्ल स्वरमें कहा – होगा, अवश्य होगा!

इस परम मंगलमय शुभाशीर्वादको सुनकर जब हम साधारण श्रोताओंका मन आह्लादसे भर गया, तब जिन बूआजीके प्रति यह मंगलवाणी कही गयी थी, उनके असीम आनन्दका मात्र कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

इस प्रकार सुख-विभोर श्रीमहाराजजी बाबाके पाससे ज्यों ही जाने लगे, बाबाके दृष्टिपथपर आ गयीं वे चरण-पादुकाएँ। बाबाने देखा कि एक व्यक्तिके शीशपर एक सिंहासन है और उसमें कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु पुष्पमालाके मध्य सुशोभित है। बाबाने पूछा – उस व्यक्तिके शीशपर जो सिंहासन है, उसमें क्या है?

एक सहचरने कहा – चरण-पादुका।

बाबाने फिर पूछा – किनकी?

सहचरको उन चरण-पादुकाओंका पूर्ण परिचय नहीं था। यह संक्षिप्त बातचीत श्रीमहाराजजीके कानोंमें पड़ गयी। इस चर्चाको सुनकर श्रीमहाराजजी लौट पड़े और उन्होंने बाबाको चरण-पादुकाका परिचय दिया।

बाबाको ज्यों ही पता चला कि ये पावन-चरण-पादुकाएँ अनन्त-श्रीविभूषित आद्यसम्प्रदायाचार्य श्रीरामानन्दजी महाराजकी हैं, वे उन चरण पादुकाओंको बार-बार प्रणाम करने लगे, उनका दर्शन पाकर अपने सौभाग्यकी सराहना करने लगे और उन चरण-पादुकाओंके शुभागमनसे गीतावाटिकाकी भूमिको धन्य-धन्य कहने लगे।

बाबाके भावमय व्यक्तित्वकी यह मधुर झाँकी देखकर श्रीमहाराजजीके आश्चर्य और आनन्दकी सीमा नहीं थी। श्रीमहाराजजी मन-ही-मन कह रहे थे – अपने महज्जनकी अभ्यर्चना कैसी होनी चाहिये और उनके स्मृति-चिह्नोंका समादर कैसा होना चाहिये, इसे एक मात्र संत ही जानता है। ये सांसारिक लोग इस बातको भला क्या जानें और क्या समझें? बाबाके दैन्यको, सद्भावको, प्रणतिको, मान-दानको देख-देख करके श्रीमहाराजजी आनन्द-विभोर हो रहे थे और बार-बार बलिहार जा रहे थे।

जब श्रीमहाराजजी कथा-मण्डपमें पधारे और व्यासासनपर विराजित हुए, तब उनकी वह भावविभोरता हृदयके भीतर सीमित न रह सकी और शाब्दिक अभ्यर्चनाके रूपमें अभिनन्दन करनेके लिये अधरोंसे बह पड़ी। जिस रीतिसे बाबाने उन चरण-पादुकाओंको प्रणाम किया था, वह सारा प्रसंग

श्रीमहाराजजीने उपस्थित श्रोताओंको सुनाते हुए कहा – कथा कहनेके पूर्व आज एक विशेष बात मैं निवेदन करना चाहता हूँ। भगवान श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज भारतकी ऐसी महान विभूति हैं, जिन्होंने मानव मात्रकी हितकामनासे प्रेरित होकर भवसागर-संतरणार्थ साकेतविहारी श्रीसीतारामजीकी सर्वसुखदायिनी परम मंगलकारिणी सरल भक्ति-भावनाका प्रचार किया। ये युगल चरण-पादुकाएँ उन्हीं महान आद्य आचार्यजीकी हैं। मैं इन चरण-पादुकाओंकी प्रतिदिन षोडशोपचारसे सविधि पूजन किया करता हूँ, परन्तु इन चरण-पादुकाओंको यहाँ गीतावाटिकामें जितना सम्मान मिलना चाहिये था, वैसा नहीं देखकर मेरे मनमें अपार खिन्नता थी। मैं अपनी व्यथाको व्यक्त नहीं करता था।

अब आजका प्रसंग सुनें। यह प्रसंग अभी-अभीका है और कथा मण्डपमें आनेके पूर्वका है। मेरा यह नियम है कि कथा कहनेसे पहले मैं बाबा सरकारके दर्शनके लिये जरूर जाता हूँ। मैं कितना ही बड़ा आचार्य क्यों न होऊँ, इससे भला क्या? मैं उनके दर्शनार्थ अवश्य जाया करता हूँ। आज बाबा सरकारके दर्शनके लिये हमलोग गये थे। साथमें श्रीराम और श्रीलक्ष्मण भी थे। हमलोगोंको आते हुए देखकर वे खड़े हो गये। फिर बाबा सरकारके श्रीमुखसे मंगलाशीर्वादके रूपमें जो सुमंगलवाणी सुननेको मिली, वह आप उन कुछ लोगोंसे पूछ लीजियेगा, जो मेरे साथ थे। जब हम विदा होकर चलने लगे, तब हो यह गया कि उनकी दृष्टि इन चरण-पादुकाओंपर पड़ गयी। फिर उन्होंने इशारा किया कि पादुकाओंको इधर ले आओ। उन्होंने इन पादुकाओंको लेकर कम-से-कम तीन बार प्रणाम किया ही। बाबा सरकार जैसे मूर्धन्य विद्वान और परमहंस परिव्राजकाचार्य भी इन पादुकाओंको प्रणाम करते हैं, इस भावमयी अर्चनाको देखकर मेरे आनन्दकी सीमा नहीं थी। मेरे भीतरका सारा खेद और कष्ट दूर हो गया।

इसी घटनासे सम्बन्धित मुझे एक बात और कहनी है। इसे आपलोग मेरा एक सुखद संदेश समझें। संत लोग वस्तुतः कभी उपराम नहीं होते। हाँ, संसारवालोंको भ्रममें डाल देनेके लिये उपरामताका आवरण ओढ़ लेते हैं। संत लोग सांसारिकोंको ठगनेके लिये उपराम होते हैं। संत कभी उपराम नहीं होते और कभी अपना विवेक नहीं खोते। यदि बाबा सरकारका विवेक खो गया होता तो वे पादुकाजीको प्रणाम करनेके लिये भला क्यों बुला लेते? बाबा सरकारने

पादुकाओंकी जो समर्चना की, उसको देखकर मेरा हृदय प्रफुल्लित हो गया, आनन्दातिरेकसे भर गया। मैं तो उन पादुकाओंका आदर करता ही हूँ, पर बाबा सरकार जैसे वयोवृद्ध- ज्ञानवृद्ध-तपोवृद्ध-लीलावृद्ध संतके द्वारा इतना अधिक आदर दिया जाना, यह देखकर परम आश्चर्य हुआ।

आप जरा बाबा सरकारकी वर्तमान स्थितिपर किञ्चित् विचार करें। जिनकी अस्वस्थताको देखकर विगत दो वर्षोंमें स्नानके नामपर गीले कपड़ेसे शरीर केवल पोंछ दिया जाता है और जिनको भिक्षा करानेके लिये आहारको छोटी-छोटी गोली बनाकर चम्मचसे अधरोंके भीतर रख दिया जाता है, मानो किसी शिशुको दुलराकर खिलाया जा रहा हो, जिनका शारीरिक रंग-ढंग ऐसी दशातक बदल गया हो, उन बाबा सरकारका विवेक पूरी तरह सजग है और वे आद्य आचार्यकी पावन चरण-पादुकाओंको अत्यधिक सम्मान देते हैं। यह सब देखकर मुझे परमानन्द हुआ। मैंने उनसे कहा कि ये आद्य रामानन्दाचार्यजीकी पादुकाएँ हैं तो बाबा सरकारने कहा कि मैं किसी लायक नहीं हूँ, पर अब वन्दन करके इनको आदर करने लायक शायद बन जाऊँगा। उनका स्वयंका ऐसा अमानीपन और पादुकाओंका ऐसा समादर देखकर आज श्रीकृष्ण-कथा कहनेकी और सप्ताह-कथा सुनानेकी पूरी दक्षिणा मुझे पूर्ण रूपसे मिल गयी है। अब मुझे किसी अन्यसे सम्मानकी अपेक्षा नहीं रह गयी। आज मेरे मनमें किसी भी प्रकारकी कोई व्यथा या खिन्नता नहीं रह गयी। बाबा सरकार द्वारा की गयी मंगलमयी अर्चना देखकर मैं सदाके लिये उनका ऋणी हो गया।

सारे श्रोता श्रीमहाराजजीके भाव-प्रवाहमें बहे जा रहे थे। सब बह रहे थे, पर कुछ इने-गिने-श्रोताओंको छोड़कर। हनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समितिके जो प्रमुख पदाधिकारी थे, उन श्रोताओंको मन-ही-मन अपने प्रमादपर बड़ा खेद हो रहा था। उन्होंने अपनी भूलके लिये श्रीमहाराजजीसे क्षमा याचना की। संत-जीवन श्रीमहाराजजी तो क्षमा स्वरूप ही हैं। उनके मनमें भूलकी स्मृति तो पानीपरकी रेखाके समान है।

अब कथारम्भके पूर्व व्यास-पूजनके साथ-साथ भगवान श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजकी पावन चरण-पादुकाओंका पूजन अत्यधिक आदर पूर्वक प्रतिदिन होने लगा।

* * * * *

पूज्या माँका महाप्रयाण

चिता-समाधिके अत्यन्त समीप टिनशेडके नीचे नित्य निवास करते हुए बाबा अपने महाभाव-सिन्धुकी ललित लहरोंपर कभी लहराते रहते और कभी उस सिन्धुकी गम्भीर गहराईमें निमग्न रहते। महाभावमय बाबाके जीवनमें कई बार शारीरिक कष्ट भीषण रूपमें आये और तब-तब संदेह होने लगता था कि क्या बाबा अब 'विदाई' लेनेवाले हैं?

वे भला विदाई कैसे लेते? बाबूजी अपने महाप्रयाणके पूर्व उन्हें एक कार्य सौंप गये थे और वह कार्य था पूज्या माँकी सँभालका। अपने परम प्रेमास्पद द्वारा सौंपे गये कार्यको उन्होंने हृदयसे स्वीकार किया था। माँका भी स्वास्थ्य बड़ा शिथिल चल रहा था और बार-बार आशंका होती थी कि पता नहीं कब वे अपनी आँखें सदाके लिये बन्द कर लें।

गहरा आश्चर्य होता है बाबाकी सुव्यवस्थित योजनापर और सुदूर दृष्टिपर। ५ अक्टूबर १९९१ से लेकर २३ सितम्बर १९९२ तक बाबूजीका जन्मशताब्दी उत्सव संवत्सर पर्यन्त सारे देशमें मनाया जा रहा था। इस अवधिमें माँकी रुग्णताने खतरनाक मोड़ ले लिया। बाबा सोच रहे थे कि इस संवत्सरकी अवधिमें यदि माँ 'जाती' है तो अपने परमप्रेमास्पदके शताब्दी उत्सवमें बड़ी बाधा आयेगी। १९ सितम्बर १९९२ को माँने बाबासे कहा था – इस रुग्ण शरीरमें भीषण कष्ट हो रहा है। यह कष्ट अब सहा नहीं जाता। अब कन्हैयाके पास भेज दो।

माँके इन पीड़ा-पूर्ण शब्दोंको सुनकर बाबाने सान्त्वना देते हुए उत्तर दिया – तुम चिन्ता मत करो। तुम अपने कन्हैयाके पास जावोगी और मैं तुम्हें 'भेज' करके ही 'जाऊँगा'।

बाबाने यह सान्त्वना तो दे दी, परन्तु उनके चिन्तनमें यह भी समाया हुआ था कि संवत्सर पर्यन्त चलनेवाले शताब्दी महोत्सवकी सम्पन्नता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह महोत्सव २३ सितम्बर १९९२ को सम्पन्न हुआ।

२४ सितम्बर १९९२ को माँकी तबीयतमें गम्भीर रूपसे गिरावट आयी और २६ सितम्बर १९९२ के प्रातःकाल माँ अपने जीवनसर्वस्व 'कन्हैया' के पास चली गयीं। इस करुण समाचारके फैलते ही देशके कोने-कोनेसे श्रद्धालु भक्तजन आये और २७ सितम्बर १९९२ के दिन गीतावाटिकामें बाबूजीकी समाधिके पास ही अपराह्नकालमें पूज्या माँकी चिता प्रज्वलित हुई।

* * * * *

जीवन-लीलाका संवरण

९ अक्टूबर १९९२ के दिन पूज्या माँका श्राद्ध-कार्य पूर्ण रूपसे भली प्रकार सम्पन्न हुआ। श्राद्ध-कार्यकी कर्म-काण्ड-प्रक्रियाके सम्पन्न होते ही ९ अक्टूबर १९९२ के दिन रात्रिके समय ही बाबाके स्वास्थ्यमें गिरावट आयी। स्वास्थ्यकी स्थितिके बिगड़ते ही कैंसर अस्पतालके डाक्टर सम्मान्य श्री एम.एन.शर्मा एवं डा.एल.डी.सिंह आवश्यक चिकित्सामें तुरन्त संलग्न हो गये। बाबाके यति-धर्मको ध्यानमें रखते हुए चिकित्साके रूपमें सेवा-कार्य हो रहा था। हमारी सेवा-तत्परता चाहे जितनी उत्कृष्ट हो, उसको सफलताका श्रेय तभी मिल पाता, जब बाबा उसको सफल बनाना चाहते। तत्परता पूर्वक चिकित्सा-सेवा चल रही थी और चल रही थी देवराधना भी कि बाबा शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ करें, परन्तु बाबाको तो अब कुछ अन्य ही अभीष्ट था। ज्यों-ज्यों स्वास्थ्यमें गिरावट आती चली गयी, त्यों-त्यों बात फैलती गयी और नगरके श्रद्धालु एवं स्नेहीजन अधिकाधिक संख्यामें गीतावाटिका आने लगे बाबाके स्वास्थ्यका समाचार जाननेके लिये। सभी आत्मीयजनोंकी आन्तरिक चाह थी कि बाबा शीघ्र स्वस्थ हो जायँ, परन्तु यह सारी शुभ भावना, यह सारी सेवा-चर्या और यह सारी देवाराधना तभी सफल होती, जब बाबा हमारे बीच ठहरना चाहते, परन्तु उन्होंने तो 'जाने' का संकल्प कर लिया था और हम सभी लोगोंके मध्यसे उन्होंने सदाके लिये विदाई ले ली १३ अक्टूबर १९९२ के प्रातःकाल लगभग साढ़े आठ बजे।

उनकी 'विदाई' ने सारे वातावरणको बुरी तरहसे झकझोर दिया। करुण क्रन्दनका भीषण स्वर फूट पड़ा। एक तथ्यको देखकर बार-बार आश्चर्य होता है। ९ अक्टूबरके दिन पूज्या माँके श्राद्ध-कार्यके पूर्ण होते ही इसके चार दिन बाद ही १३ अक्टूबरके प्रातःकाल साढ़े आठ बजे पूज्य बाबा सदाके लिये 'अन्तर्हित' हो

गये। पट-परिवर्तन इतना शीघ्र हो जायेगा, इसकी कल्पना किसीको नहीं थी। घटनाओंका चक्र बड़ी तेजीसे घूम रहा था। घटनाओंका विकास जिस प्रकारसे हुआ और उस विकासका जो परिणाम सामने आया, उससे एक बात भली प्रकारसे स्पष्ट हो गयी कि बाबूजीके कथनानुसार बाबाने माँकी सँभालका जो दायित्व स्वीकार किया था, उस दायित्वके निर्वाहके लिये ही वे 'ठहरे' हुए थे और उस दायित्वका पूर्ण निर्वाह होते ही उन्होंने 'चले जाने' का निर्णय कर लिया।

अपने प्रेमास्पद पूज्य बाबूजीके शताब्दी-उत्सवको भली प्रकारसे सम्पन्न होने देना, सम्पन्नता तक माँको 'रोके' रखना और माँके जाते ही स्वयं तुरन्त अन्तर्हित हो जाना, बाबाकी इस व्यवस्थित योजनाको सोच-सोच करके चिन्तन हर बार विस्मयकी गहराईमें खो जाता है और फिर विस्मयको भी विस्मय होने लगता है यह देखकर कि उन परमप्रेमी बाबाने अपने प्रेमास्पदकी चिता-स्थलीपर निवास करते हुए और नयनोंके नीरको प्रतिपल पोंछते हुए अपना सारा जीवन बिता दिया।

प्रीतिकी टेकका ऐसा उदाहरण —

भयउ न अहइ न अब होनिहारा।

प्रीतिकी रीतिका यह निर्वाह जैसा अनोखा है —

सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी।।

प्रेमके राज्यमें प्रीतिकी वेदीपर ऐसी निजात्माहुतिको नित्य-निरन्तर वन्दन!

१३ अक्टूबर १९९२ के प्रातःकाल बाबाने विदाई ली। सारा वातावरण बुरी तरहसे शोकाकुल हो रहा था। कुछ बहिनें बुरी तरहसे रो ही थीं। जो सभीके दुख-दर्दको सुन लिया करते थे और सभीकी परेशानीको अपनी परेशानी मान लिया करते थे, वस्तुतः मनसे मान लिया करते थे, वे अब हमारे बीच नहीं रहे। सिद्ध संतोंसे गम्भीर सच्चर्चा करने वाले, साधकोंको उपयोगी परामर्श देने वाले, ब्राह्मणोंकी समस्याको हल कर देने वाले, जन-जनको आन्तरिक प्यारसे नहला देने वाले, बहिनों-माताओंके संतापको हर लेने वाले, गोमाताकी रक्षाके लिये विकल रहने वाले, गरीबोंकी क्षण-प्रति-क्षण सँभाल करने वाले, गुणीजनोंकी प्रतिभाको आदर देने वाले और सबसे बड़ी बात यह कि लोकोपकारके विभिन्न कार्योंको करते हुए भी लोकोत्तर दिव्य रस-सिन्धुमें सतत निमग्न रहनेके अद्वितीय आदर्शको प्रस्तुत करने वाले बाबा अब हमारे मध्य नहीं रहे।

गीतावाटिकाका सारा वातावरण विशेष रूपसे करुणाप्लावित हो उठा। समझमें नहीं आ रहा था कि सान्त्वना दी जाय या ली जाय। वाटिकाकी दिशा-दिशामें शोकका सागर उमड़ रहा था। शोक-सागरके भीषण ज्वारने सारी गीतावाटिकाको आत्मसात कर रखा था।

बाबाकी विदाईका प्रसंग तो कालका एक क्रूर प्रहार था। प्रहारसे आहत हम सभी व्याकुल थे। हम चाहे कितने ही व्याकुल क्यों न हों, परन्तु अन्तिम कई कार्योंको किसी प्रकारसे सम्पन्न करना शेष था ही। हमलोगोंको यह पता नहीं था कि संन्यासीके 'शान्त कलेवर'की अन्तिम क्रिया किस प्रकारसे पूर्ण की जाती है। गोरखपुरका गोरखनाथ मन्दिर 'नाथ पंथी' साधुओंका एक महान केन्द्र है। गोरखनाथ मंदिरके महन्त पूज्य श्रीअवेद्यनाथजी महाराजसे सम्पर्क किया गया और उन्होंने कुछ बतलाया। संयोगसे इस समय जम्मू-काश्मीरके स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज गीतावाटिकामें विद्यमान थे। गोरखनाथके पूज्य श्रीमहन्तजी एवं स्वामी श्रीकृष्णानन्दजीके परामर्शके अनुसार अन्तिम क्रियासे सम्बन्धित तैयारी होने लग गयी।

गीतावाटिकामें जहाँ श्रीगिरिराज भगवान प्रतिष्ठित हैं, वहाँ काठकी एक चौकी रखकर उसपर दूसरी चौकी रखी गयी। इस चौकी रूपी वेदीके चारों ओर गैरिक वस्त्रोंसे एक विशाल मण्डप बनाया गया। बाबाके शान्त-कलेवरको कुटियासे लाकर इस चौकी रूपी वेदीपर पद्मासनके रूपमें पधरा दिया गया, जिससे सभी भक्तजन दर्शन कर सकें। शहरसे लोग दर्शनार्थ उमड़ पड़े। बाबाके अन्तर्हित होनेका समाचार टेलीफोन द्वारा देशके कोने-कोनेमें फैलने लगा। वृन्दावन, कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, पटना, वाराणसी, बीकानेर इस प्रकार दूर-दूर स्थित अनेक स्थानोंसे फोन द्वारा यह जिज्ञासा होने लग गयी कि भूमि-समाधि कब दी जायेगी, जिससे अन्तिम दर्शनके लिये समयसे पूर्व गीतावाटिका पहुँचा जा सके।

सभीको यही बतलाया जा रहा था कि १४ अक्टूबरके दिन भूमि-समाधिकी क्रिया सम्पन्न होगी। विभिन्न स्थानोंसे लोग कोई वायुयान द्वारा, कोई ट्रेन द्वारा और कोई कार द्वारा गीतावाटिकाकी ओर चल पड़े। चल पड़े नहीं, अपितु यह कहना चाहिये कि भाग चले। गया जिलाके फखरपुर ग्रामसे बाबाके बड़े भाई पूज्य पंडित श्रीतारादत्तजी मिश्र भी आये। उनके साथ परिवारके अन्य कई लोगोंका भी गीतावाटिकामें आगमन हो गया।

गृहस्थकी शव-यात्राके लिये जो विमान बनता है, उसको अर्थी कहते हैं

और संन्यासीके लिये प्रयुक्त होनेवाले विमानको 'वैकुण्ठी' कहते हैं। स्वामी श्रीकृष्णनन्दजी महाराजके निर्देशानुसार वैकुण्ठीके निर्माण-कार्यमें बढ़ई संलग्न हो गये। प्रयास यह था कि वैकुण्ठीके आगे और पीछे दण्ड पर्याप्त लम्बे रहें, जिससे सभीको कन्धा देनेका अवसर मिल सके। यहाँ एक तथ्यकी ओर संकेत कर देना उचित रहेगा। यदि तत्परता पूर्वक कार्य किया जाता तो वैकुण्ठी १४ अक्टूबरके प्रातःकाल ही तैयार हो जाती, किन्तु जान-बूझ करके विलम्ब किया जा रहा था। बढ़ईसे कहा जा रहा था कि कार्य धीरे-धीरे करो, जिससे बम्बई आदि दूर स्थानोंसे स्वजन १४ अक्टूबरकी दोपहरतक आकर अंतिम दर्शन कर ले सकें। दोपहरके बाद निर्मित वैकुण्ठीको फूलोंसे खूब सजाया गया तथा उसे गिरिराज परिसरमें लाया गया।

बाबाके अन्तर्हित होनेका समाचार ज्यों ही वृन्दावन पहुँचा, पूज्य श्रीमहाराजजी (श्रद्धेय श्रीबालकृष्णदासजी महाराज) अत्यधिक मर्माहत हो उठे। उनको अपार व्यथा हो रही थी कि साधकोंकी, चरणाश्रित जनोंकी, समर्पित भक्तोंकी सँभाल अब कौन करेगा। अन्तर चाहे कितना ही व्यथित हो, उस व्यथासे विकलित हृदय लिये-लिये श्रीमहाराजजी वृन्दावनसे गीतावाटिका आये। आकर चौकीकी वेदीपर विराजित बाबाके गौर वपुको अपलक नयनसे बहुत देरतक एकटक निहारते रहे, निहारते रहे। निहारते हुए अपनी मूक भाषामें बाबासे उन्होंने मन-ही-मन क्या कहा, यह तो वे ही जाने, परन्तु एक अद्‌भुत बात घटित हो गयी। बाबाके 'शान्त कलेवर' ने अपनी पलकोंके स्पन्दनसे श्रीमहाराजजीको सान्त्वना प्रदान की।

चौकीकी वेदीके समीप मिट्ठीके अनेक नये घड़ोंमें गंगाजल भरा था। जलमें केशर चन्दन आदि कई सुगन्धित वस्तुएँ सम्मिश्रित की गयी थीं। इस पावन गंगाजलसे महाराजजीने 'शान्त कलेवर'को सजल नेत्रों सहित स्नान कराया। भाव-परिवारके निज जनोंने तथा अनेक भक्तजनोंने स्नान करवाया। इसके बाद कलवेरके गैरिक वस्त्रको हटा करके नवीन गैरिक वस्त्र धारण करवाया गया। फिर कलेवरको वैकुण्ठीपर पद्मासनकी मुद्रामेंसे विराजित किया गया। चन्दन चर्चित कलेवरपर जन-जनके विकल हृदय एवं सजल नयन लटके-अटके हुए थे।

सर्व प्रथम कन्धा बड़े भाई पूज्य पण्डित श्रीतारादत्तजी मिश्रने दिया। साथ ही कन्धा दिया अनेक भक्तजनोंने। राधा नामकी तुमुल जय-ध्वनिके साथ कन्धेपर वैकुण्ठीको लिये-लिये अन्तिम यात्राका शुभारम्भ हुआ।

प्यार प्यार सत्य है।
राधा नाम सत्य है।।
नन्दनन्दन सत्य है।
प्यार प्यार सत्य है।।

इन चार पंक्तियोंके उच्च घोषसे सारा वातावरण प्रबल रूपसे गूँज रहा था। श्रीगिरिराज भगवानकी परिक्रमा लगा करके फिर श्रीराधाकृष्ण साधना मन्दिरकी परिक्रमा देते हुए वैकुण्ठीको श्रीराधाष्टमी महोत्सवके प्राचीन पण्डालमें पधराया गया। वहाँ श्रद्धा पूरित हृदयसे बाबाके प्रति रह-रह करके पुष्पाञ्जलि समर्पित की जा रही थी। इसके बाद गीतावाटिकाकी परिक्रमा लगाते हुए वैकुण्ठीको वहाँ लाया गया, जहाँ बाबाकी कुटिया थी।

बाबाने पहले ही यह कह रखा था कि मेरे शान्त कलेवरको यहीं भूमि-समाधि देनी है, जहाँ यह कुटिया है। बाबाके शान्त कलेवरको जब कुटियासे चौकीवाली वेदीपर लाया गया था, उसी समयसे कुटियाकी भूमि की खुदाईके कार्यका शुभारम्भ हो गया था। भूमिको खोदनेका कार्य मजदूरोंने नहीं, भक्तजनोंने किया। इस भूमि-गह्वरका १४ अक्टूबरके प्रातःकाल शास्त्रीय नियमानुमोदित विधिसे पूजन किया गया। १४ अक्टूबरके अपराह्नकालमें वैकुण्ठी भूमि-गहवरके पास लायी गयी।

शान्त कलवेरको भूमि-गह्वरमें पूर्ण सम्मान सहित पधरा दिया गया। फिर पूज्य श्रीमहाराजजीने तथा गोरखनाथके महन्त पूज्य श्रीअवेद्यनाथजी महाराजने अपने अञ्जलिसे शुद्ध मिट्टी अर्पित की। फिर तो सभी भक्तोंने क्रम-क्रमसे अपनी-अपनी कराञ्जलिसे मिट्टी समर्पित की। भूमि-गह्वर मिट्टीसे भर गया। १४ अक्टूबर १९९२ के दिन सूर्यास्तसे पहले-पहले बाबाके शान्त कलेवरको भूमि-समाधि प्रदान कर दी गयी। अब शोकाकुल जन-समुदाय भूमिस्थ बाबाकी पावन समाधिकी समतल भूमिको विकल नेत्रोंसे निहार रहा था।

* * * * *

वृन्दावन से श्रीमहाराजजी का पत्रात्मक उद्‌बोधन

गीतावाटिकामें कुछ दिन निवास करके श्रीमहाराजजी श्रीधाम वृन्दावन चले गये। वृन्दावनसे श्रीमहाराजजीका जो भावभरा पत्रात्मक उद्‌बोधन आया, वह मननीय है। वह आगे प्रस्तुत किया जा रहा है –

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीधाम वृन्दावन
५-११-१९९२

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम्।।

श्रीकृष्ण सहसा अन्तर्धान हो गये। उन्हें न देखकर व्रजगोपियोंकी जैसे गजराजके बिना हथनियोंकी दशा हो गयी। हृदय विरहाग्निसे जलने लगा। श्रीनन्दनन्दन मदनमोहनकी मत्त गजराजकी-सी गति, मधुर-मन्द-मादक मुसकान विलास भरी चितवन, मनोन्मादकारी प्रेमालाप, नव-नव लीलाओं एवं माधुर्य रसभरी भावमयी मुद्राओंने उनके चित्तको हरण कर लिया था। श्रीकृष्णमयी कृष्णकी अनेक चेष्टाओंका अनुकरण करने लगीं मतवाली गोपियाँ।

चतुर किशोरकी चाल-हास्य-विलास-चितवन-भाषण आदिमें उनके समान ही हो गईं। उनके तनुमें वही गति मानसिक स्थिति भाव भंगिमा सृष्टित हो गई। श्रीकृष्णस्वरूपा, तन्मया देहसे बेभान उन्हींकी लीलानुकरण करने लगीं।

वे सभी ऊँचे स्वरसे उनके अनन्त गुणोंका गायन करती हुई वन-वनमें सघन लताच्छन्न प्रदेशोंमें ढूँढने लगीं।

श्रीराधाबाबा अन्तर्हित हो गये, तत्क्षण आप सभी व्याकुल हो गये हैं। वे श्रीकृष्णके कमनीय भुज-दण्ड-परिमण्डित होकर मन्द गमन कर चुके।

वे चले नहीं गये (लीला संवरण नहीं किया) अन्तर्हित हुए हैं। जैसे श्रीपरीक्षितसे श्रीशुकदेवजीने कहा – श्रीकृष्ण कहीं दूर नहीं गये थे। वे तो समस्त जड चेतनमें उनके बाहर भी आकाशके समान एक रस स्थित हैं। वे वहीं थे, उन्हींमें थे, परन्तु उन्हें न पाकर गोपियाँ वनसे तरुओंसे पता पूछने लगीं।

श्रीबाबा वहींपर हैं, दूर कहीं नहीं गये, समस्त वृन्दावाटिकाके वृक्ष लता

पताओंमें एक रस स्थित हैं।

गिरिराज-प्रदक्षिणामें जैसे गमन करते हाव-भाव भंगिमामें आलापचारीमें दीखते थे, अवश्य ही दीख रहे हैं।

निरन्तर स्मरणीय विषय यह है कि सर्वदा निज स्वरूपमें राधा भावमें भावित माधुर्य रस-घन-रसिक शिरोमणि श्रीराधा बाबा अपने समीप समक्ष सतत वर्तमान हैं।

भाव नित्य, भाव भावित नित्य, भावमयी लीलायें नित्य एवं लीला स्थली नित्य। हाँ, रहेंगे, किन्तु कहेंगे नहीं 'थे'।

हृदय-मूल, भाव वर्तमान है भाव-हीनका जन्म हुआ ही नहीं। महापुरुषोंके चरित्र श्रवणसे भाव हृद्-मूलसे जागृत होता है। मधुर लीलाओंसे रसिक महानुभावोंके जीवनसे, शरीर-वाणी-मनसे पूर्णानुगत होकर ही भावानुभव कर सकते हैं।

मैंने पूछा था महापुरुष लीला संवरणके पश्चात् भी दर्शन कैसे देते हैं? मिलते क्यों?

श्रीश्रीबाबाने कहा – महाप्रलय पर्यन्त महापुरुष अपने कृपा पात्रोंको पथ-प्रदर्शन हेतु करुणया मिला करते हैं। उनका पूर्वीय स्वरूप भी नित्य है।

इस महामधुर वाक्यसे यही सुदृढ़ निश्चय विश्वास पूर्वक होता है कि श्रीश्रीबाबा व्याकुल साधकोंका पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे। अकारण करुणा करते रहेंगे। निकटतम होकर दर्शन भी देते रहेंगे।

हमें उनकी वाणीसे अभिप्रेरित होकर कथित नियमोंका पालन करते हुए अखण्डतया गीतावाटिकामें ही (अनन्यतया) निवास करना चाहिये।

शेष श्रीबाबाकी अहैतुकी कृपा।

आप सभीका शुभ चिन्तक
बालकृष्णदास
(श्रीवृन्दावन)

* * * * *

आन्तरिक निवेदन

पूज्य बाबा 'चले' गये। चले नहीं गये, अपितु उन्होंने स्वयंको छिपा लिया। उनके प्रत्यक्ष दर्शनका अभाव हो गया। उनके 'अन्तर्हित' हो जानेसे विचित्र करुणाप्लावित परिस्थितिका मेरे भीतर-बाहर उद्‌भव हो गया। मन बार-बार यही कहता था कि कमरेमें चुपचाप पड़े रहो। अब कहाँ जाना और कहाँ आना? न किसीसे मिलनेकी इच्छा थी और न कहीं जानेकी चाह। उनका दर्शन, उनकी संनिधि, उनसे संलाप अब भला कहाँ प्राप्य है? सजलतासे आर्द्र एक ऐसी विचलित मनस्थिति थी, जिसमें कमरेका एकान्त काटने दौड़ता था, पर बाहरका कोलाहल चुभता रहता था। विवशतामें घुटती हुई एक ऐसी विह्वलता थी, जिसमें आँखके आँसू न बाहर आ पाते थे और न भीतर छिप पाते थे। क्या सुबह, क्या शाम, उनके अविरल-निर्मल प्यारकी याद न हँसने देती थी और न रोने देती थी। इन दिनों भावनाओंके प्रवाहमें विरोधाभास कम नहीं रहा है। कभी लगता मानो उनसे सतत संयुक्त हूँ और कभी लगता कि अब नित्य वियुक्त हूँ।

कोई माने या न माने, पर यह सत्य है कि मैं व्रज-भावकी बातोंको सुननेके लिये पूर्णतः अनधिकारी था। सचमुच मैं अपात्र था, इसके बाद भी उन्होंने श्रीप्रिया-प्रियतमके परम प्रेमकी पावन चर्चा कभी-कभी छेड़ी ही है, उन पावन क्षणोंकी स्मृति क्या उठते क्या बैठते, भावनाओंको मथती रहती थीं। वे व्यथित भावनाएँ रह-रह करके उनका वन्दन करती थीं, उनका अर्चन करती थीं, उनकी 'जय-जय' कहती थीं। वह एक ऐसा संवेदनशील क्षण था, जिसमें उर्मिल मनकी भावुकता, भावकुतामें व्याप्त कोमलता उनका स्तवन करनेके लिये अकुला रही थी।

ऐसी आकुलताके चञ्चल क्षणोंमें श्रीमहाराजजीका भावभरा पत्रात्मक उद्‌बोधन मिला। इस पत्रात्मक उद्‌बोधनने आलोलित अन्तरको और अधिक आन्दोलित कर दिया। अब वृन्दावन उत्तरस्वरूप लिखकर भेजनेके लिये मेरे पास कुछ भी नहीं था। मेरे सामने प्रश्न था कि पूज्य श्रीमहाराजजीको अब क्या लिख करके भेजूँ। उन संवेदनशील करुणार्द्र क्षणोंमें विगलित अन्तरके तरलित भाव सलिलित होकर लेखनीके सहारे जिस रूपमें अवतरित हो उठे, उसी साक्षर सलिलाञ्जलिको बड़े संकोचके साथ समर्पित कर सकनेका साहस कर पाया श्रीमहाराजजीके श्रीचरणोंपर। पता नहीं, मेरी भावकुताकी कोमलताको उन्होंने

किस रूपमें स्वीकार किया।

वही सलिलाञ्जलि यहाँ भी प्रस्तुत है इस संकलनके अन्तिम निवेदनके रूपमें –

तेरे आँचलकी जय हो,

जो स्नेहके कोमल तारोंसे निर्मित है,
जो स्नेहके भव्य भावोंसे भावित है,
जो स्नेहकी ललित लीलाओंसे लसित है।

तेरे आँचलकी बार-बार जय हो,

जिसकी किनारीका किनारा नहीं,
जिसकी सुन्दरताकी सीमा नहीं,
जिसकी मधुरताका पार नहीं।

तेरे आँचलकी सतत जय-जयकार हो,

जो प्रेमका निधान है,
जो नग्नका परिधान है,
जो स्वयंमें महान है।

तेरे आँचलकी करुणा अपार है,

जो ग्लानिसे गलते हुए जनकी व्यथा हर लेती है,
जो कलुषसे कलपते हुए जनकी कालिमा पोंछ लेती है,
जो हृदयसे समर्पित हुए जनको सुषमित बना देती है।

तेरे आँचलकी महिमा शब्दातीत है,

जिसका दर्शन श्रान्त पथिकके लिये एक आन्तरिक आश्वासन है,
जिसका आश्रय क्लान्त पथिकके लिये एक लोकोत्तर अवलम्बन है,
जिसका वन्दन भ्रान्त पथिकके लिये एक आध्यात्मिक नवजीवन है।

तेरे आँचलकी निरपेक्षता अकल्पनीय है,

जो आश्रितोंसे कृतज्ञताकी अभिलाषा नहीं करती,
जो गुणज्ञोंसे आदरकी आशा नहीं करती,
जो स्वजनोंसे सराहनाकी अपेक्षा नहीं करती।

तेरे आँचलकी सदाशयता सदा प्रणम्य है,

जिसकी छायामें आलोचक-प्रशंसक समान रूपसे स्थान पाते हैं,
जिसकी छायामें परिचित-अपरिचित समान रूपसे सम्मानित होते हैं,
जिसकी छायामें साधु-असाधु समान रूपसे समादृत होते हैं।

तेरे आँचलके तन्तु-तन्तुकी बलिहारी है,

जिसके तार-तारमें प्रेमके प्रदर्शनकी भावना नहीं,
जिसके तार-तारमें प्रीतिके प्रतिदानकी कामना नहीं,
जिसके तार-तारमें प्यारके प्रचारकी कल्पना नहीं।

तेरे आँचलकी निकुञ्ज-भावना नित्य वन्दनीय है,

जिसका अवतार प्रियतमके प्यारकी जयकार है,
जिसका अभिसार प्रियतमके हृदयकी मनुहार है,
जिसका विस्तार प्रियतमके विहारकी झंकार है।

तेरे आँचलको – जी करता है – चूम लूँ,

जिसकी अरुणिमा स्नेहमें मूक बलिदानका पाठ है,
जिसकी फहरान स्नेहमें मूक उपासनाका गीत है,
जिसकी गाथा स्नेहमें मूक सेवाकी सीख है।

तेरे आँचलकी जय-जय क्यों न मनाऊँ,

जो अकल्पनीय महान है, पर जिसे अपनी महानताका अभिमान नहीं,
जो अतुलनीय सुन्दर है, पर जिसे अपनी सुन्दरताका अभिज्ञान नहीं,
जो अद्वितीय मधुर है, पर जिसे अपनी मधुरताका अनुमान नहीं।

वही आँचल मेरे लिये एक मात्र उपास्य है,
वही आँचल मेरे लिये एक मात्र वरेण्य है,
वही आँचल मेरे लिये एक मात्र आश्रय है।

वही आश्रय दे,
वही छाया दे,
वही स्नेह दे।

विनीत
राधेश्याम बंका

* * * * *

परिशिष्ट

समर्पणमूर्ति श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी

पूज्य बाबूजी (रस-सिद्ध-संत परम पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के नित्य-लीलामें लीन हो जानेके बाद 'कल्याण'के सम्पादनका भार जिनके ऊपर आया, उन समर्पण-मूर्ति पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके व्यक्तित्वकी गरिमाकी झलक प्रस्तुत कर सकना मेरी क्षमताके बाहर है। गोस्वामीजीके समर्पण-भावका जैसा स्वरूप और जो स्तर था, वह जब मन और बुद्धिके लिये ही अगम्य है, तब भला वाणी उसका वर्णन कैसे कर सकती है? उनके मनको, मस्तिष्कको और जीवनको क्षुद्रता अथवा अभद्रता कभी छलसे भी स्पर्श न कर सकी। 'मति अकुंठ हरि भगति अखंडा'के साकार रूप थे गोस्वामीजी।

श्रद्धेय श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी

पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी एम.ए., शास्त्री, का जन्म सं.१९५७ वि. आषाढ़ कृष्ण ९ गुरुवार, २१ जून १९०० ई. को बीकानेरमें तैलंग ब्राह्मण कुलमें हुआ था। कई पीढ़ी पहले इनके पूर्वज दक्षिण भारतके तेलंगाना प्रदेशसे आकर राजस्थानके बीकानेर नगरमें बस गये थे। राजाश्रय मिलनेके कारण ही इनके पूर्वज बीकानेर आये थे। अब

तो तैलंग गोस्वामी-गणके अनेक परिवार बीकानेरमें बसे हुए हैं। भक्तिमती श्रीचन्द्रकलादेवी तथा श्रीव्रजलालजी गोस्वामीको इनके माता-पिता कहलानेका गौरव प्राप्त हुआ। सन् १९१६ में हाईस्कूलकी परीक्षा उत्तीर्ण करके आप वाराणसी चले आये और क्वीन्स कालेजमें अँगरेजी, दर्शन शास्त्र तथा संस्कृतका अध्ययन करने लगे। यहाँ पढ़ते समय महामहोपाध्याय पं.श्रीगोपीनाथजी कविराजका विशेष सामीप्य और संरक्षण मिला। क्वीन्स कालेजका अध्ययन पूर्ण करके आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे सन् १९२२ में संस्कृतकी एम.ए. परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की। तदुपरान्त कुछ समयके लिये आपने महामना पं.श्रीमदनमोहनजी मालवीयके निजी सचिवके रूपमें कार्य किया। वाराणसीसे बीकानेर वापस आनेके बाद चार वर्षतक प्रधानाध्यापकके रूपमें कार्य करते रहे। फिर छः वर्षोंतक बीकानेर राज्यके राजनैतिक विभागमें कार्य किया और राज्यके प्रधान दीवान आदरणीय श्रीमन्नूभाई शाहके निजी सचिव रहे।

सन १९२८ ई. के प्रारम्भमें गोस्वामीजीकी सर्व प्रथम भेंट पूज्य बाबूजीसे हुई। बाबूजीके भक्तिपूर्ण संत जीवनका परिचय देकर उनसे गोस्वामीजीकी भेंट करानेका श्रेय आदरणीय श्रीगम्भीरचन्दजी दुजारीको है। भगवन्नामके प्रचार तथा सत्संगके उद्देश्यसे विभिन्न स्थानोंमें भ्रमण करते हुए बाबूजी १३ जनवरी, १९२८ को बीकानेर पधारे थे। वहाँ बाबूजीके नेतृत्वमें नगर-संकीर्तनका आयोजन हुआ और उनका प्रवचन हुआ। गोस्वामीजीने यह प्रवचन सुना और उनका मन बड़ा प्रभावित हुआ। गोस्वामीजीका अध्ययन और ज्ञान विशद था। इस प्रवचनको सुनकर उन्हें लगा कि बाबूजी द्वारा जो कुछ भी कहा गया है, उसका आधार अनुभव है। मात्र पढ़ी-पढ़ायी अथवा सुनी-सुनायी बातोंके आधारपर ऐसा प्रवचन अथवा प्रतिपादन किया ही नहीं जा सकता।

इस प्रवचनको सुननेके बाद गोस्वामीजीका मन बाबूजीके प्रति आकृष्ट होने लगा। बाबूजी बीकानेरमें दो दिन तक रहे। इन दो दिनोंमें गोस्वामीजी बाबूजीके पास घंटों बैठे रहते तथा उनके साथ भगवद्विषयक चर्चा करते रहते। गोस्वामीजीके मनपर इस प्रथम समागमकी गहरी छाप पड़ी। इस छापके फलस्वरूप गोस्वामीजी लालसान्वित हो उठे कि बाबूजीके निकट सम्पर्कमें कुछ दिन रहना चाहिये। यह इच्छा बढ़ती ही चली गयी।

निकट सम्पर्ककी लालसा बहुत बढ़ जानेपर गोस्वामीजी सन् १९२९ ई. के ग्रीष्म कालमें बीकानेरसे गोरखपुर आये और बाबूजीके पास लगभग डेढ़ मास रहे। इस डेढ़ मासकी अवधिमें बाबूजीकी दिनचर्या और उनके जीवनको अति निकटसे देखनेका और उनके विचारोंको सतत सुननेका अवसर मिला। एक कहावत है– 'ज्यों-ज्यों कसे, त्यों-त्यों बसे'। गोस्वामीजी बाबूजीको जितना- जितना ही कसौटीपर कसते चले गये, उतना-उतना ही बाबूजी गोस्वामीजीके मनमें बसते चले गये। गोस्वामीजीको लगा कि बाबूजीका जीवन साधारण नहीं है। बाबूजीके भगवद्विषयक विचार, भगवत्सम्बन्धी अनुभव एवं भगवन्मय जीवन उनके असाधारण एवं लोकोत्तर व्यक्तित्वके परिचायक हैं। बाबूजीके लोकोत्तर व्यक्तित्वका प्रभाव गोस्वामीजीपर ऐसा पड़ा कि उन्होंने दस-पन्द्रह दिनके अन्दर ही एक महान् निर्णय ले लिया। वह निर्णय था सब कुछ छोड़कर बाबूजीके चरणोंके समीप रहनेका तथा शेष जीवन इन्हींकी छत्र-छायामें व्यतीत करनेका। यह जीवनका महत्त्वपूर्ण मोड़ था। अपने जीवनके सम्बन्धमें इस महत्त्वपूर्ण निर्णयको क्रियान्वित कर लेना सहज कार्य नहीं था। घरपर पूज्या माताजी और पूज्य पिताजी थे। उनकी आज्ञा अपेक्षित थी। डेढ़ मासके बाद गोस्वामीजी गोरखपुरसे बीकानेर वापस आ गये। बाबूजीके पास रहनेका जो निर्णय गोस्वामीजीने लिया था, तदनुसार कार्य करनेमें बड़ी कठिनाइयाँ आयीं, पर अध्यात्म-पथके सच्चे पथिकको भला कौन निश्चयसे विरत कर पाता है? सारी कठिनाईयोंको हल करते हुए सन् १९३३ ई. में गोस्वामीजी अपने संकल्पको पूर्ण कर पाये।

गोस्वामीजीके कोई सन्तान नहीं थी। वे अपनी धर्मपत्नीके सहित सन् १९३३ ई. में बीकानेरसे गोरखपुर चले आये स्थायी रूपसे रहनेके लिये। गोस्वामीजीका सहयोग पाकर बाबूजीको बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। समाजमें भगवद्भक्ति एवं भगवन्नामका प्रचार करनेके लिये तथा जन-जीवनमें आध्यात्मिकता एवं नैतिकताकी प्रतिष्ठाके लिये बाबूजी सतत प्रयत्नशील थे और इस लक्ष्यकी ओर आगे बढ़नेके लिये अन्य अनेक साधनोंके साथ-साथ सबसे सशक्त सहायिका थी 'कल्याण' मासिक पत्रिका। 'कल्याण' मासिक पत्रिका केवल हिन्दीमें निकलती थी। गोस्वामीजीके शुभागमनसे अब अँगरेजी भाषामें भी एक मासिक पत्रिका

निकलने लगी। इसका नाम था 'कल्याण-कल्पतरु'। 'कल्याण-कल्पतरु'का भी उद्देश्य वही था, जो 'कल्याण'का था, बस, अन्तर केवल भाषाका था। गोस्वामीजी हिन्दी, संस्कृत एवं अँगरेजीके प्रकाण्ड पण्डित थे। इन तीनों भाषाओंके व्याकरणपर गोस्वामीजीका असाधारण अधिकार था।

गोस्वामीजीके सम्पादकत्वमें 'कल्याण-कल्पतरु'के निम्नलिखित विशेषांक प्रकाशित हुए।

१- The God Number (ईश्वरांक)
२- The Gita Number (गीतांक)
३- The Vedant Number (वेदांतांक)
४- The Krishna Number (श्रीकृष्णांक)
५- The Divine Name Number (भगवन्नामांक)
६- The Dharma Tattva Number (धर्म-तत्त्वांक)
७- The Yoga Number (योगांक)
८- The Bhakta Number (भक्तांक)
९- The Krishna Leela Number (श्रीकृष्णलीलांक)
१०- The Cow Number (गो-अंक)

उपरोक्त विशेषांक तो प्रकाशित हुए ही, इनके अतिरिक्त 'कल्याण-कल्पतरु'के विशेषांकके रूपमें श्रीगीता-तत्त्व-विवेचनी, श्रीरामचरितमानस, श्रीमद्भागवतमहापुराण तथा वाल्मीकि रामायणके अँगरेजी अनुवाद क्रमशः प्रकाशित होते रहे। खेदके साथ लिखना पड़ रहा है कि वाल्मीकि रामायणका अनुवाद पूर्ण करनेके पहले ही गोस्वामीजी हमारे बीचसे चले गये। वाल्मीकि रामायणके युद्ध काण्डका अँगेरजी अनुवाद कर चुकनेके बाद उन्होंने उत्तर काण्डका अनुवाद-कार्य अपने हाथमें लिया। उत्तर काण्डके लगभग एक-तिहाई अंशका अनुवाद वे कर पाये थे कि रुग्णताने उनको घेर लिया। यह अस्वस्थता उनके जीवनके लिये विघातक सिद्ध हुई। फिर तो उत्तर काण्डके शेष भागका अनुवाद हो ही नहीं पाया।

'कल्याण-कल्पतरु'का प्रकाशन सन् १९३४ ई. से प्रारम्भ हुआ था। गोस्वामीजी 'कल्याण-कल्पतरु' के प्रधान सम्पादक तो थे ही, 'कल्याण' हिन्दी मासिक पत्रिकामें भी बाबूजीको सहयोग देने लगे और

सन् १९३९ ई. से 'कल्याण'के सहायक सम्पादकके रूपमें उनका नाम छपने लगा। बाबूजीके नित्यलीलामें लीन हो जानेके उपरान्त 'कल्याण'के सम्पादनका कार्य-भार गोस्वामीजीपर ही आ गया। अब 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु', दोनों पत्रिकाओंका कार्य गोस्वामीजीको सँभालना पड़ता था। गोस्वामीजीके सम्पादकत्वमें 'कल्याण' के तीन विशेषांक प्रकाशित हुए– श्रीरामांक, श्रीविष्णु-अंक और श्रीगणेशांक। सामग्री और सुसज्जा की दृष्टिसे ये तीनों विशेषांक ठीक वैसे ही थे, जैसे बाबूजीके सम्पादकत्वमें अनेक विशेषांक प्रकाशित होते रहे हैं। गोस्वामीजीके सम्पादकत्वमें भी 'कल्याण' की गौरवमयी परम्परा और आध्यात्मिक गरिमा अक्षुण्ण रही।

बाबूजीके महाप्रस्थानके उपरान्त 'कल्याण'के सम्पादनका भार सँभालनेपर उन्होंने जो निवेदन लिखा, उसमें उनके हृदयका एक अत्यन्त उज्ज्वल रूप देखनेको मिलता है। निवेदनमें उन्होंने लिखा था– ''परम भागवत श्रीपोद्दारजीके पार्थिव देह त्यागकर नित्यलीलालीन हो जानेसे 'कल्याण'के सम्पादनका भार मेरे दुर्बल कंधोंपर आ पड़ा है, जिसे वहन करनेमें मैं अपनेको सर्वथा अक्षम अनुभव करता हूँ। अबतक तो 'कल्याण' का सारा भार श्रीपोद्दारजी अकेले ही वहन करते थे। मेरा नाम तो उन्होंने शीलवश मुझे प्रोत्साहन देने और मेरी सम्मानकी वासनाको पूर्ण करनेके लिये ही अपने गौरवशाली नामके साथ जोड़ दिया था। मेरे अन्दर न तो साधनाका बल है, न आध्यात्मिक अनुभव है, न त्याग है, न तप है, न दैवी सम्पदा है, न प्रौढ़ विचार है, न वैसा शास्त्रोंका अध्ययन एवं मनन है और न मेरी लेखनीमें ही शक्ति है। ऐसी दशामें 'कल्याण' जैसे पत्रके सम्पादकमें जैसी और जितनी योग्यता होनी चाहिये, उसका मैं अपने अन्दर सर्वथा अभाव देखता हूँ। 'कल्याण'की सेवाका मैं अपनेको सर्वथा अनधिकारी मानता हूँ। पर परम श्रद्धेय श्रीभाईजी जैसे परम स्वजनके प्रति अपने कर्तव्य-निर्वाहकी भावनासे 'कल्याण'के कार्यको किसी रूपमें सँभाल रहा हूँ। वास्तवमें 'कल्याण'के कार्यको मैं श्रीभाईजी द्वारा ही किया हुआ अनुभव करता हूँ। पद-पदपर वे अपने चिन्मय रूपसे इसकी सँभाल करते हैं, अन्यथा मुझ जैसे अयोग्य, अल्पज्ञ, साधनहीन तुच्छ व्यक्तिद्वारा यह महान कार्य सम्पन्न होना सर्वथा असम्भव है। मैं स्वयं आश्चर्यचकित हूँ कि कैसे क्या कार्य

हो जाता है। उनकी पद-पदपर सँभालको देखते हुए मनको विश्वास नहीं होता कि श्रीभाईजी 'कल्याण'से पृथक् हो गये हैं। मैं तो यह मानता हूँ कि 'कल्याण' उनका है और वे 'कल्याण' के हैं, या यों कहें कि वे 'कल्याण' स्वरूप ही हो गये हैं। हमारा विश्वास ही नहीं, अनुभव है कि श्रीभाईजी परोक्ष रूपमें आज भी 'कल्याण' को सँभाल रहे हैं और इसी कारण इसका कार्य सुचारु रूपसे चल रहा है।''

'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादन-कार्यको सँभालते समय भी गोस्वामीजीकी यही मान्यता थी कि पत्रिका-सम्पादनका कार्य सम्पन्न हो रहा है मेरे द्वारा नहीं, अपितु उनके (अर्थात् बाबूजीके) द्वारा, भले ही यह सम्पन्नता परोक्ष रूपसे ही रही हो। समर्पणका जैसा आदर्श गोस्वामीजी महाराजने उपस्थित किया, वह सर्वथा अनुपम है।

'कल्याण-कल्पतरु' और 'कल्याण' पत्रिकाओंके कार्यसे अलग गोस्वामीजीने भक्तकवि सूरदासजीके भ्रमर-गीतके कई सौ पदोंका हिन्दीमें अर्थ लिखा। २७० श्लोकोंवाली 'श्रीराधा-सुधा-निधि' ग्रन्थके पदच्छेद-अन्वय-अर्थसहित टीकाके सम्पादनका कार्य भी गोस्वामीजीद्वारा सम्पन्न हुआ। गीताप्रेससे संस्कृत एवं अँगरेजी भाषाका जितना साहित्य, चाहे पत्रिकाके रूपमें अथवा पुस्तकके रूपमें छपता, उसकी शुद्धि एवं प्रामाणिकताका अधिकांश श्रेय गोस्वामीजीके परिश्रमको है।

श्रीरामचरितमानसके बारेमें अब तो यह बात प्रायः कही-सुनी जाती है कि यदि इस ग्रन्थकी रचनाका श्रेय गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीको है तो इस ग्रन्थको नगर-नगर, ग्राम-ग्राम पहुँचानेका श्रेय गीताप्रेसके माध्यमसे बाबूजीको है। गीताप्रेससे श्रीरामचरितमानसको प्रकाशित करनेके पहले बाबूजीने मानस पाठका संशोधन गोस्वामीजीसे करवाया। गोस्वामीजीको इस संशोधन-कार्यमें महत्त्वपूर्ण सहयोग मिला हिन्दीके विद्वान श्रीनन्ददुलारेजी वाजपेयीसे। फिर स्वयं बाबूजीने मानसका हिन्दीमें अर्थ लिखा। मलिहाबाद स्थित मानसकी प्रति, राजपुर स्थित अयोध्या काण्डकी प्रति, दुलही ग्राम स्थित सुन्दर काण्डकी प्रति, श्रावण कुञ्ज (अयोध्या) स्थित बालकाण्डकी प्रति, गोलाघाट (अयोध्या) स्थित मानसकी प्रति तथा और भी कुछ प्रतियाँ, इन सभी प्रतियोंका तुलनात्मक अध्ययन करके ही गोस्वामीजीने मानसका पाठ संशुद्ध किया था। आज गीताप्रेससे मानसका जो पाठ प्रकाशित हो रहा है, उसे प्रस्तुत किया गोस्वामीजीके

अध्ययनशील व्यक्तित्वने ही।

गोस्वामीजी अनुवाद एवं सम्पादनके कार्यमें अधिक व्यस्त रहा करते थे, अतः कई-कई दिनतक वे बाबूजीसे मिल नहीं पाते थे। बाबूजीके सेवा-परायण नित्य परिकर भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवालको यह प्रिय नहीं लगा। एक दिन भाई श्रीकृष्णचन्द्रजीने गोस्वामीजीसे कहा— आपको दिनमें कम-से-कम एक बार बाबूजीके पास जाना चाहिये। न जाने कितने लोग दूर-दूरके स्थानोंसे मिलनेके लिये आते हैं और आप यहाँ रह करके भी बाबूजीसे नहीं मिलते?

गोस्वामीजीने मधुर स्वरमें उत्तर दिया— यदि मैं मिलने जाता हूँ तो कम-से-कम आधा घंटा समय लग ही जायेगा। इस आधे घंटेका उपयोग यदि मैं उनके बतलाये हुए कार्यको करनेमें लगाऊँ तो कितना सुन्दर हो? उनके द्वारा निर्दिष्ट कार्य पहले ही पूरा नहीं हो पाता। यदि मैं प्रतिदिन उनके पास जाने लगूँ तो जानेसे उनके कार्यकी ही हानि होगी। मैं अपने मनकी बात कैसे समझाऊँ? उनका दर्शन और उनका सामीप्य कौन नहीं चाहता? उनके दर्शन और संभाषणसे मुझे बड़ा सुख मिलेगा, परंतु इस सुखसे अधिक सुखप्रद है उनकी आज्ञाका पालन। मेरी आन्तरिक चाह है कि उनका कार्य पूर्ण हो।

गोस्वामीजीके उत्तरको सुनकर भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी मौन हो गये। क्रमशः गोस्वामीजीपर कार्य-भार अधिकाधिक बढ़ता ही चला जा रहा था। उनके कार्यमें कुछ सहारा दे देनेकी भावनासे एक बार श्रीमद्भागवतमहापुराणके कुछ अध्यायोंका अँगरेजीमें अनुवाद एक विख्यात विद्वानसे करवाया गया। उस अँगरेजी अनुवादमें गोस्वामीजीको कई न्यूनताएँ दिखलायी दीं। श्लोकके मध्यमें जहाँ 'च', 'तत्', 'ह', 'हि', 'एव', 'वा', 'बत', 'अपि', 'इव', 'अथ', 'इति' आदि शब्द आते हैं, इन शब्दोंके प्रयोगके बारेमें अच्छे-अच्छे विद्वानोंकी कुछ-कुछ ऐसी धारणा है कि कई बार तो इन शब्दोंको काव्य-रचना पूर्ण करनेके लिये श्लोकोंमें भर दिया गया है। गोस्वामीजीकी अति सुदृढ़ मान्यता यह थी कि इन शब्दोंको पाद-पूरणार्थ-प्रयोगके रूपमें सोचना अपनी अल्पज्ञताका परिचय देना है। इतना ही नहीं, इससे

यह भी ध्वनित होता है कि ऐसे टिप्पणीकर्ता विद्वान्, जो इन शब्दोंका प्रयोग पाद-पूर्तिके रूपमें देखते हैं, वे पुराणों-जैसे विशाल वाङ्मयके रचयिता वेदव्यासजीको ऋषि-दृष्टि-सम्पन्न द्रष्टा-कवि नहीं मानकर मात्र एक श्रेष्ठ कवि मानते हैं। वास्तविकता यह है कि श्रीमद्भागवतमहापुराणके एक-एक शब्दमें अर्थ-गाम्भीर्य है और उस अर्थ-गाम्भीर्यकी गहराईतक पहुँच न होनेके कारण ही इस प्रकारके हलके अभिमत भागवतकारके प्रति व्यक्त कर दिये जाते हैं। ऐसी भ्रान्त धारणाओंके फलस्वरूप जो अर्थ-दोष उस अनुवादमें थे, उन सबको गोस्वामीजीने बाबाको दिखलाया। बाबाका भी मत वही था, जो गोस्वामीजीका था। बाबा तो श्रीमद्भागवतमहापुराणके एक-एक शब्दको महत्त्वपूर्ण मानते हैं और उन्हें देर नहीं लगी गोस्वामीजीके कथनको समझनेमें। उस अँगरेजी अनुवादमें व्याप्त अर्थ-दोषवाली बात बाबाके भी ध्यानमें भली प्रकारसे आ गयी। फिर उन विख्यात विद्वान द्वारा कृत अँगरेजी अनुवादको आलमारीमें सुरक्षित रख देनेके लिये कहकर बाबाने गोस्वामीजीसे निवेदन किया— गोस्वामीपाद! आपपर कार्य-भार अवश्य ही अधिक है, किंतु जगतके समक्ष प्रामाणिक अनुवाद रखनेके लिये यह अनुवाद-कार्य आप ही पूर्ण करें।

और यह अनुवाद-कार्य गोस्वामीजीद्वारा सम्पन्न हुआ। बाबा गौरवमयी वाणीमें कई बार कहा करते हैं कि अपने आर्ष ग्रन्थोंका ऐसा प्रामाणिक और आधिकारिक अँगरेजी अनुवाद अभीतक मेरे देखनेमें नहीं आया। गोस्वामीजीके अनुवाद-कौशलकी गरिमाको देश-विदेशके अच्छे-अच्छे विद्वानोंने उन्मुक्त मनसे स्वीकार किया है।

प्राच्य पुरातन विद्या विशारद डा.श्रीविश्वम्भरशणजी पाठकके विचारानुसार गोस्वामीजीने भारतीय धर्म-ग्रन्थोंके अँगरेजी अनुवादके कार्यमें महान आदर्शकी प्रतिष्ठा की है। हिन्दू धर्म-ग्रन्थोंका अँगरेजीमें अनुवाद करनेवाले आजतक जितने भी विद्वान हुए हैं, चाहे वे किसी काल अथवा देशके हों, उन सबको गोस्वामीजीने पीछे छोड़ दिया है। वेदोंके महापण्डित कहलानेवाले श्रीमैक्समूलर महोदय, इसी प्रकार अनुवाद-कार्यके क्षेत्रमें अमेरिकी विद्वान मारिस ब्लूमफील्ड, जर्मन विद्वान गेल्डनर, भारतीय विद्वान आनन्दकुमार स्वामी, कोई भी गोस्वामीजीकी गरिमाका स्पर्श करनेमें वस्तुतः समर्थ नहीं है।

गोस्वामीजीकी मान्यता रही है कि साहित्य-क्षेत्रके काव्यों और धर्म-क्षेत्रके काव्योंके अनुवादकी शैलीमें अन्तर होना चाहिये और इस अन्तरका हेतु यही है कि धर्म-काव्योंमें प्रत्येक शब्दकी प्रयोग-पद्धति और प्रत्येक वाक्यकी रचना-शैलीके पीछे एक विशेष प्रयोजन है। अध्यात्म-साधना और शब्द-साधना, इन दोनों साधनाओंसे गोस्वामीजीका जीवन परिपूर्ण था, इसीके फलस्वरूप उन्हें इस विशेष प्रयोजनकी जानकारी हो सकी। हिन्दू धर्मके आर्ष वाङ्मयका अँगरेजी भाषामें प्रामाणिक अनुवाद किस पद्धतिसे होना चाहिये, इसपर गोस्वामीजीने गम्भीरतापूर्वक विचार किया और उस चिन्तन-नवनीतको उन्होंने कार्य-रूपमें प्रतिफलित भी कर दिखलाया।

एक बार बाबाने बाबूजीकी एक कृतिका एक श्रेष्ठ विद्वानसे संस्कृतमें अनुवाद करवाया। वह अनुवाद ठीक लगनेके बाद भी बाबाने उस संस्कृत अनुवादको देखनेके लिये गोस्वामीजीके पास भेज दिया। उस संस्कृत अनुवादमें एक प्रयोगके सामने प्रश्नवाचक चिह्न लगाकर गोस्वामीजी बाबाके पास आये। गोस्वामीजीने वह प्रयोग दिखलाते हुए बाबासे कहा— मेरी अल्प समझके अनुसार यह प्रयोग सही नहीं लग रहा है।

बाबाको वह प्रयोग सही लग रहा था। बाबा द्वारा पूछे जानेपर गोस्वामीजीने अपने पक्षमें कुछ कारण बतलाये। जब कुछ निर्णीत नहीं हो सका तो यह तय हुआ कि किन्हीं प्रौढ संस्कृत वैयाकरणको बुलाकर इस प्रयोगके विषयमें निर्णय लिया जाये। गोरखपुरकी एक संस्कृत पाठशालाके व्याकरणाचार्यको बुलवाया गया। उनको सब बात समझानेमें ही आधा घंटा लग गया। सब समझ करके भी वे अपना निर्णय नहीं दे पाये। फिर गीताप्रेसमें कार्य करनेवाले एक पण्डितजीको बुलवाया गया, जो व्याकरणके विशेषज्ञ माने जाते थे। वे व्याकरण- विशेषज्ञ दोनों पक्षोंकी बातको सुनकर भी कोई समाधान नहीं दे पाये। फिर यह सोचा गया कि वाराणसीसे किसी व्याकरण-मर्मज्ञको बुलवाकर निर्णय करवाया जाये। जब बात बढ़ते-बढ़ते यहाँतक आ गयी तो गोस्वामीजीने कहा— क्यों किसीको बुलवाया जाये ? हमलोग परस्परमें विचार करके स्वयं निर्णय कर लें।

बाबा और गोस्वामीजीके मध्य यह विचार-विनिमय तीन दिनतक चलता रहा। यह एक प्रकारका मधुर शास्त्रार्थ था। दोनों पक्ष उस प्रयोगके औचित्य-अनौचित्यपर अपने-अपने तर्क प्रस्तुत कर रहे थे। फिर यह तय हुआ कि श्रीभट्टोजी दीक्षित द्वारा प्रणीत व्याकरण-ग्रन्थको देखना चाहिये। उस

व्याकरण-ग्रन्थमें दोनों ही बातें दी गयी थीं और दोनों प्रकारके प्रयोगोंको सही ठहराया गया था। अब तो कोई प्रश्न ही शेष नहीं था। इस व्याकरणग्रन्थने दोनों पक्षोंको पूर्ण सन्तुष्ट कर दिया। दोनों पक्षोंका समाधान होते ही बाबाने तत्काल गोस्वामीजीकी मान्यताको आदर दिया और उस संस्कृत अनुवादमें गोस्वामीजीके कथनानुसार प्रयोगको ठीक कर दिया।

इस प्रसंगको सुना करके बाबा कई बार गोस्वामीजीके बारेमें कहा करते हैं कि व्याकरणकी गहराईमें उनकी पैठ और स्व-पक्षको प्रतिपादित करनेकी उनकी योग्यता अनोखी थी। इधर तो बाबा इस प्रकार कहा करते थे और उधर यदि कोई शब्द-प्रयोग गोस्वामीजीके लिये कदाचित् विचारणीय बन जाता था तो वे उस सम्बन्धमें विचार एवं विवेचन करनेके लिये बाबाके पास आया करते थे।

इतने महान विद्वान होकर भी गोस्वामीजी स्वयं अमानी रहकर दूसरोंको सम्मान देनेमें सदैव तत्पर रहा करते थे। एक बार इसका बड़ा सुन्दर प्रसंग देखनेको मिला। घटना सम्भवतः सन् १९६३ ई. की है। बर्तन माँजनेवाले, फूल- पौधोंकी सँभाल करनेवाले, इस स्तरके जितने भी सेवक गीतावाटिकामें थे, उन सभीके भोजनका विशद आयोजन बाबाकी प्रेरणासे हुआ। सेवकोंमें बाबाका भगवद्भाव था और इसी भावसे यह कार्यक्रम आयोजित हुआ था। सभी सेवकोंको पहननेके लिये नवीन वस्त्र दिया गया और सभीको वाटिकाके बड़े-बड़े लोगोंने परोस-परोस करके भोजन करवाया। सेवकोंके भोजन कर लेनेके बाद ही घरवालोंने प्रसाद-भावसे भोजन किया। इस कार्यक्रममें बाबाने यह निर्धारित किया था कि सभी सेवकोंके चरण भोजनके पूर्व धोये जायँ और पाद-प्रक्षालनका यह कार्य गोस्वामीजीके द्वारा सम्पन्न हो। ज्यों ही यह बात बाबाने गोस्वामीजीसे कही, त्यों ही गोस्वामीजीने इसे अपना परम सौभाग्य माना। यह भावना उनके मनमें स्फुरित ही नहीं हुई कि मैं विद्वान सम्पादक हूँ, अथवा मैं आचार-निष्ठ भक्त हूँ, अथवा मैं गोस्वामि-कुलोद्भूत ब्राह्मण हूँ, अथवा मैं एक प्रौढ़ व्यक्ति हूँ, अपितु पाद-प्रक्षालनके कार्यके लिये स्वयंका चयन होना बाबाके अमाप्य प्यारका परिचायक माना। जब सेवकोंका यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने बाबासे प्रार्थना की— बाबा! ऐसा कार्य नहीं होना चाहिये, जो हमलोगोंको बहुत भारी पड़े। गोस्वामीजी महाराज हमलोगोंके लिये पूज्य हैं और प्रणम्य हैं, फिर क्या हमलोगोंके लिये सह्य होगा कि वे हमारे पैरोंका स्पर्श करें?

सभी सेवकोंद्वारा ऐसा कहे जानेपर पाद-प्रक्षालनका कार्य

गोस्वामीजीद्वारा नहीं हो पाया, परंतु वे तो पूर्णरूपेण प्रसन्न मनसे प्रस्तुत थे।

सन् १९५९ ई. के आस-पास एकबार बाबाने गोस्वामीजीके पास एक संदेश भिजवाया। इस संदेशको सूचना कहना चाहिये। सूचना यह थी कि बीकानेरनरेश महाराजाा श्रीगंगासिंहजीका लीला-प्रवेश हो गया है। जब गोस्वामीजी बीकानेरके प्रशासन-विभागमें कार्य करते थे तो उनका महाराजा श्रीगंगासिंहजीसे निकट सम्पर्क रह चुका था। इस सूचनाको पाकर गोस्वामीजीको आनन्द हुआ, परंतु आनन्दसे अधिक आश्चर्य हुआ। आश्चर्य हुआ यह सोचकर कि उनका निधन तो कई वर्ष पहले हो चुका था और श्रीराधाकृष्णके लीला-राज्यमें उनका प्रवेश अब हुआ और यह हुआ तो किस पुण्य अथवा साधना अथवा कृपाके फलस्वरूप हुआ? गोस्वामीजीको ज्ञात था कि महाराजा श्रीगंगासिंहजी तो राजसी ठाट-बाटके मध्य जीवन व्यतीत करनेवाले मात्र एक श्रेष्ठ हिन्दू नरेश थे। गोस्वामीजीने अपने आश्चर्यको व्यक्त किया तो बाबाने बतलाया कि महाराजा श्रीगंगासिंहजीको अपनी किसी साधनाके फलस्वरूप यह स्थिति प्राप्त नहीं हुई, अपितु यह तो वस्तुतःश्रीपोद्दार महाराजसे होनेवाले सम्पर्क एवं सम्बन्धका सुन्दर परिणाम था। इस तथ्यको सुनकर गोस्वामीजीकी बाबूजीके प्रति आन्तरिक श्रद्धा-भावना कितनी पुष्ट और प्रफुल्ल हुई होगी, यह कल्पनासे परेकी बात है।

गोस्वामीजी गीताप्रेससे प्रकाशित होनेवाले 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु'के सम्पादकीय विभागमें कार्य करते थे केवल सेवा-भावसे भावित होकर। द्रव्यार्जनका उद्देश्य तो रंचमात्र भी नहीं था। इसके बाद भी गीताप्रेसकी ओरसे जीवन-निर्वाहके लिये यत्किंचित् मिलता ही था। जो मिलता था, वह वस्तुतः यत्किंचित् ही था और इससे पूज्या चाचीजी (पूज्य गोस्वामीजी धर्मपत्नी) को गृहस्थ-जीवनकी व्यवस्थामें कठिनाई झेलनी पड़ती थी। चाचीजीके स्वभावमें व्यावहारिकता अधिक थी और वैसा माधुर्य नहीं था, जैसा गोस्वामीजीके व्यक्तित्वमें था। चाचीजीके रूक्ष व्यवहारसे गोस्वामीजीका मन कभी-कभी खिन्न हो जाया करता था। बाबा चाचीजीको अपनी माँके समान आदर एवं स्थान दिया करते थे। एक बार बाबाने गोस्वामीजीसे कहा—गोस्वामीपाद! आपसे एक निवेदन है। आपकी धर्मपत्नीके प्रति मेरे मनमें मातृ-भाव है। वह बाबाकी माँ है, ऐसा मानकर उसपर शासन नहीं करना चाहिये। उसकी कोई चेष्टा आपको अप्रिय लगती हो तो उसे सहन कर लेना

चाहिये।

बाबाद्वारा ऐसा कह दिये जानेके बाद गोस्वामीजीने फिर कभी चाचीजीपर शासन किया ही नहीं। सचमुच, गोस्वामीजी जैसा समर्पण-भाव होना कठिन ही है।

गोस्वामीजीका आचार-विचारपर बड़ा ध्यान रहा करता था। एक बार गोस्वामीजी गीताप्रेस गये। गीताप्रेसके मैनेजर श्रीदुर्गाप्रसादजी गुप्त अपने कार्यालयमें कुर्सीपर बैठ हुए थे। श्रीदुर्गा बाबूसे गोस्वामीजीको मिलना था। कमरेमें प्रवेश करनेके पूर्व गोस्वामीजी अपने पैरोंमेंसे कपड़ेवाला जूता निकालने लगे। श्रीदुर्गा बाबूने कहा– आप जूता क्यों निकाल रहे हैं? मेरे इस कमरेमें तो सभी लोग जूता पहने हुए ही आते हैं।

गोस्वामीजीने कहा– मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि जहाँ लिखने-पढ़ानेका सात्त्विक कार्य हो रहा हो, वहाँ जूता पहने रहा जाये अथवा जूता पहने हुए ही उस कमरेमें प्रवेश किया जाये। भले ही लोग जूता पहने हुए आपके कमरेमें जाते हों, परंतु मुझे यह रुचिकर नहीं।

श्रीदुर्गा बाबूके द्वारा निवारण किये जानेके बाद भी गोस्वामीजी जूता निकाल कर ही उनके कमरेमें गये।

वंशानुवंश-परम्परासे गोस्वामीजीके परिवारमें श्रीवल्लभ-सम्प्रदायका ही आनुगत्य रहा है। वल्लभ-कुलीय होनेके कारण गोस्वामीजीके जीवनमें शौचाचार एवं स्पर्शास्पर्शका बड़ा स्थान था। गोस्वामीजी सदा अपने घरपर ही भोजन किया करते थे। कहीं अन्यत्र भोजन करनेका प्रश्न ही नहीं था। बस, एक अपवाद था। वह था बाबूजीके घरका प्रसाद। बाबूजीके घरकी प्रत्येक वस्तु गोस्वामीजीको ग्राह्य थी। शौचाचारसे सम्बन्धित एक सरस प्रसंग उस समयका है, जब तीर्थ-यात्रा-ट्रेन मथुरा स्टेशनपर ठहरी हुई थी। बाबाके निर्देशके अनुसार ठाकुर श्रीघनश्यामजी बरसानेके एक प्रच्छन्न प्रेमी भक्तके घरसे भिक्षा-प्रसाद ले आये और बाबाको दे दिया। बाबाने कण-मात्र स्वीकार करके वह भिक्षा-प्रसाद पा लेनेके लिये गोस्वामीजीको दे दिया। गोस्वामीजीका नित्य-नियम अभी सम्पन्न नहीं हुआ था और इतना ही नहीं, स्पर्शास्पर्श-निष्ठाकी प्रबलताके कारण हर वस्तु ग्राह्य भी नहीं थी। इन दोनों बातोंके होते हुए भी गोस्वामीजीने बिना विचार किये हुए भिक्षा- प्रसादको पा लिया, केवल इसीलिये कि बाबाने पा लेनेके लिये कह दिया है। ऐसा

समर्पण-भाव था गोस्वामीजीका बाबा तथा बाबूजीके प्रति।

अपने समर्पित जीवनके कारण गोस्वामीजी बाबूजीके परिवारके एक ऐसे अभिन्न अंग बन गये थे कि परमादरणीया बाई (श्रीसावित्रीबाई फोगला) उनको चाचाजी कहती थी और बाईकी चारों सन्तानें उनको नानाजी कहती थीं। बाईके प्रति तथा बाईके बालकोंके प्रति गोस्वामीजीके मनमें अत्यधिक दुलार था। बाबूजीके चले जानेके बाद गोस्वामीजीका वात्सल्य इन बालकोंके प्रति और भी अधिक उमड़ पड़ा था।

ग्रीष्मकालमें बाबा तथा बाबूजी स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) जाया ही करते थे। उस समय गोस्वामीजी गीतावाटिकामें रहा करते थे। पीछे एक वरिष्ठ व्यक्तिको रहना ही चाहिये गीतावाटिकाकी सँभालके लिये। केवल सँभाल ही नहीं, 'कल्याण-कल्पतरु' के सम्पादन-कार्यको पूरा करनेके लिये। बस, गोस्वामीजीको गीतावाटिकाका दायित्व सँभलाकर बाबूजी बाबाके साथ स्वर्गाश्रम चले जाया करते थे। एक बार कोई ऐसा आवश्यक कार्य आ गया कि गोस्वामीजीको स्वर्गाश्रम जाना पड़ गया। गोस्वामीजी प्रातःकाल आठ-नौ बजे बाबूजीके पास डालमिया कोठी पहुँचे। पहुँचनेपर शौच-स्नानके उपरान्त बाबूजीसे आवश्यक बातचीत हुई। इसके बाद बाबूजीने कहा— आप आज ही अपराह्नकालमें गोरखपुर वापस चले जायें।

भोजनके बाद गोस्वामीजी गोरखपुर वापस जानेकी तैयारीमें लग गये। ज्यों ही बाईको पता चला कि चाचाजी तो वापसी यात्राकी तैयारीमें लगे हैं, उसे बड़ा बुरा लगा। कितने वर्षोंके बाद तो गोस्वामीजीका आना हुआ और न जाने कितने मिलनेवाले, दर्शन करनेवाले लोग होंगे? फिर यह भाग-दौड़ भी क्या कोई भली बात है कि आये और तुरंत चल दिये? बेटी होनेके नाते पिताजीसे हठ करनेका अधिकार बाईको सदा था, सदा है और यह प्रीति-कलह भी कैसा मधुर है कि बेटीके बाल-हठके सामने बाबूजीको झुकना पड़ा। बाबूजीने गोस्वामीजीको रोक लिया। फिर गोस्वामीजी कई दिन स्वर्गाश्रममें रहे, पर अपनी ओरसे कोई इच्छा नहीं। बाबूजीने वापस जानेके लिये कहा तो मनसे पूर्णतः तैयार और ठहर जानेके लिये कहा तो उसके लिये भी भीतरसे वैसी ही तैयारी। गोस्वामीजीका न चले जानेसे प्रयोजन था और न ठहर जानेसे प्रयोजन। बस, प्रयोजन है तो इतना ही है कि तुम संचालन करो और तुम्हारे संकेतपर यह जीवन परिचालित रहे। गोस्वामीजीका जीवन-सूत्र था— ''वंशीवत् जीवनको खाली कर देना ही समर्पणकी सीमा है। अपना स्वर

अपने राग अपनी चाह कुछ नहीं, प्यारेकी जैसी इच्छा''।

गोस्वामीजीका कण्ठ बड़ा सुरीला था। वृद्धावस्थामें भी उनके गायनका लालित्य बना रहा। गीतावाटिकामें प्रायः प्रतिदिन ही बाबूजीका प्रवचन एक घंटे प्रातःकाल हुआ करता था। बादके वर्षोंमें तो गोस्वामीजीको समय कम मिला करता था, परंतु गीतावाटिकाके आरम्भिक वर्षोंमें इस प्रवचनके पूर्व गोस्वामीजी एक भक्ति-पदका गायन किया करते थे। जब तीर्थ-यात्रा-ट्रेन गयी थी, तब उस ट्रेनमें बाबूजीके साथ गोस्वामीजी भी गये थे। जहाँ-जहाँ ट्रेन पहुँचती थी, वहाँ- वहाँ बाबूजीका स्वागत होता था और उपस्थित भक्तोंके मध्य बाबूजीको प्रवचन भी देना पड़ता था। वहाँ भी गोस्वामीजी प्रवचनके पूर्व पद गाया करते थे।

एकान्तवास और स्वास्थ्य-लाभकी दृष्टिसे बाबूजी सन् १९३९ से १९४५ तक रतनगढ़में रहे थे। वहींपर 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु' का सम्पादकीय विभाग भी था। बाबा भी बाबूजीके साथ थे और उनका मौन व्रत चल रहा था। इन्हीं दिनोंकी बात है। बाबा तथा बाबूजी और कुछ निकटवर्ती जन बैठे हुए थे। उसी समय गोस्वामीजीने अपने सुललित कण्ठसे श्रीरासपञ्चाध्यायीका गोपीगीत 'जयति तेऽधिकम्' गाया। गायनका माधुर्य अपनी सीमापर था। सम्पादकीय विभागके एक सदस्य आदरणीय श्रीमधुरजी साथ-साथ वीणा बजा रहे थे। उनकी मयूर वीणाकी झंकृतिने उस माधुर्यको महामाधुर्यमय बना दिया। उस माधुर्यका बाबूजी और बाबापर ऐसा प्रभाव पड़ा कि दोनों अत्यधिक विभोर हो उठे। बाबूजीकी विभोरता गम्भीर थी और वे बहुत अधिक अन्तर्मुख हो गये। बाबाकी विभोरता उच्छलित थी और वे भाव-विभोर होकर व्यथापूर्ण हृदयसे सकरुण वाणीमें 'राधा-राधा' बोलने लगे, अपितु पुकारने लगे। एक विचित्र प्रकारके भावसे पूर्ण हो उठा था उस स्थानका वातावरण। रतनगढ़के वे लोग सौभाग्यशाली थे, जो उस अवसरपर उपस्थित थे और इस प्रकार सौभाग्यशाली बननेका अवसर अन्तरंग जनोंको कई बार मिल जाया करता था। बाबाकी रुचि देखकर इस प्रकारके एकान्त गायनका आयोजन रतनगढ़की हवेलीके एकान्त क्षणोंमें कई बार हुआ है।

बाबाने सन् १९५६ ई. में कठोर मौन व्रत लिया था। मौन लेनेके पहले बाबाने गोस्वामीजीसे कहा था— रात्रिमें जब भी आपको अवकाश मिले, आप मुझे व्रज भावके पद सुना दिया करें। भले आप एक ही पद

सुनायें, पर प्रति-रात्रि मेरी कुटियाकी दक्षिण दिशामें स्थित पगडंडीपर टहलते हुए सुनाया करें।

गोस्वामीजी द्वारा पद सुनानेका क्रम अखण्ड रूपसे चलता रहा। इसमें विराम आया तब, जब सवा मास बाद बाबा-बाबूजी गोरखपुरसे रतनगढ़ चले गये।

सम्भवतः सन् १९५९ ई. की बात होगी। गीतावाटिकामें बाबूजीका प्रवचन नित्यप्रतिके नियमके अनुसार प्रातःकाल होनेवाला था। उस दिन गोस्वामीजी भी प्रवचनमें आये थे। इन दिनों गोस्वामीजी प्रायः प्रवचन- कार्यक्रममें नहीं आ पाते थे। कार्यकी अधिकताके कारण अवकाश कम मिल पाता था, परंतु कभी-कभी तो आते ही थे। ज्यों ही बाबूजीने श्रोताओंके सामने आसन ग्रहण किया, गोस्वामीजीसे पद गानेके लिये अनुरोध किया गया। गोस्वामीजीने बाबूजी द्वारा रचित पद गाना आरम्भ किया।

मेरी इस विनीत विनतीको सुन लो, हे व्रजराजकुमार!
युग-युग, जन्म-जन्ममें मेरे तुम ही बनो जीवनाधार।।
पद-पंकज-परागकी मैं नित अलिनी बनी रहूँ, नँदलाल!
लिपटी रहूँ सदा तुमसे मैं, कनकलता ज्यों तरुण तमाल।।
दासी मैं हो चुकी सदाको, अर्पणकर चरणोंमें प्राण।

इस पाँचवी पंक्तिको गाते-गाते गोस्वामीजीकी स्थिति कुछ दूसरी ही हो गयी। अन्तरकी विह्वलताने कण्ठको अवरुद्ध कर दिया। स्वर-भंगको सँभालनेकी चेष्टा उन्होंने की, पर वह असफल प्रयास था। अश्रु-प्रवाहने पूर्ण स्वरावरोध उत्पन्न कर दिया था। क्या बाबूजी और क्या श्रोतागण, सभी उपस्थित लोग गोस्वामीजीकी उस विह्वलताके प्रवाहमें डूब-उतरा रहे थे। वह पद क्या था, उस पदमें गोस्वामाजीके समर्पित जीवनकी भावनाएँ मुखरित थीं। बाबूजी मौन, श्रोतागण मौन और गोस्वामीजी भी मौन; सारे वातावरणमें मौन परिव्याप्त हो रहा था। उस नीरवताको अपने गायनसे पुनः गुञ्जित करनेका एक अल्प प्रयास किया गोस्वामीजीने। उन्होंने गानेके लिये वह पाँचवीं पंक्ति पुनः उठायी, पर पुनः वे गा न सके। पुनः वातावरणमें नीरवता परिव्याप्त हो गयी। चौदह पंक्तिवाले इस पदकी केवल चार पंक्तियाँ ही गायी जा सकीं, शेष अन-गायी ही रह गयीं। तब बाबूजीने अपना प्रवचन आरम्भ किया और आज उस प्रवचनका विषय था— वृषभानुनन्दिनी कृष्णप्रिया श्रीराधाका मूक समर्पण।

गोस्वामीजीकी भाव-विभोरताका एक और उल्लेखनीय सरस प्रसंग

स्मृति- पथपर उभर रहा है। 'कल्याण'के भावी विशेषांक श्रीरामांकके लिये आये हुए लेखोंका सम्पादन-कार्य चल रहा था। एक लेख भगवती श्रीसीतापर था। वह लेख पढ़कर गोस्वामीजीको सुनाया जा रहा था। लेखको सुनते-सुनते गोस्वामीजी इतने अधिक भाव-भरित हो उठे कि उनके नेत्रोंके अश्रु झर-झर करके कपोलोंपर प्रवाहित होने लग गये। उन्हें विस्मृत हो गया कि मैं सम्पादकीय-विभागके कमरेमें बैठा हुआ हूँ। तुरंत लेखका सुनाना बन्द कर दिया गया और उन्हें कमरेके एकान्तमें छोड़कर धीरेसे दोनों कपाट सटा दिये गये।

सन् १९६१ ई. के ग्रीष्म ऋतुकी बात होगी। बाबूजी रातको गोस्वामीजीसेश्रीराधाकृष्णकी लीलाके पद सुना करते थे। अधिकांश बार ये पद बाबूजीके स्वरचित हुआ करते थे। इन पद-गोष्ठियोंमें कीर्तनिया श्रीहरिवल्लभजी और ठाकुर श्रीघनश्यामजी, यदि वे लोग गीतावाटिकामें हैं तो अवश्य उपस्थित रहा करते थे। इन पद-गोष्ठियोंमें केवल अन्तरंग व्यक्ति ही रहा करते थे। यह पूर्णतः अन्तरंग कार्यक्रम प्रायः रातके नौ-साढे-नौ बजे आरम्भ होता था और लगभग एक-दो घंटे चला करता था। यदि कभी रंग गहरा हो जाता था तो यह कार्यक्रम रातके एक-दो बजेतक भी चलता रहता था। एक बार ऐसा हुआ कि अर्ध रात्रितक जागरण करनेका क्रम कई दिनतक चलता रहा। इससे चाचीजी (गोस्वामीजीकी धर्मपत्नी) को बड़ी चिन्ता हुई। गोस्वामीजी ब्राह्म मुहूर्तमें उठ जाया करते थे तथा नित्यके दैनन्दिन पूजन-अर्चनसे निवृत्त होकर दिन भर सम्पादन-कार्यमें जुटे रहते थे। इस जागरणसे तो गोस्वामीजीका स्वास्थ्य गिर जायेगा, बस, यही चिन्ता चाचीजीको पीड़ा पहुँचा रही थी। उन्होंने एक-दो बार गोस्वामीजीसे अनुरोध भी किया कि आपको रातमें इतनी देरतक नहीं जगना चाहिये। गोस्वामीजीने चाचीजीको कोई उत्तर नहीं दिया। समर्पित-जीवन गोस्वामीजीकी आन्तरिक भावना यही थी कि यदि बाबूजी मुझको जगाना चाहते हैं तो वैसा ही हो। इसके अतिरिक्त यह ऐकान्तिक कार्यक्रम ही तो जीवनको वास्तविक जीवन प्रदान किया करता था। पद-गानके निमित्तसे जो रस-धारा बहने लगती थी, उसीसे जीवनको वास्तविक तुष्टि और पुष्टि प्राप्त होती थी। अस्तु, गोस्वामीजीके प्रति किया गया अनुरोध जब सफल नहीं हुआ तो चाचीजीने अपना संदेश और अपनी चिन्ता बाबूजीके पास कहला भिजवाया। उस

संदेश-वाहकके द्वारा प्रत्युत्तरस्वरूप बाबूजीने कहलावया– उनका कहना सही है कि रातको जागरण करनेसे स्वास्थ्यपर कुप्रभाव पड़ता है, पर यह कुप्रभाव पड़ता है तब, जब लौकिक कार्योंके लिये जगना पड़े अथवा पारमार्थिक कार्योंमेंभी उत्साह-शून्य और भाव-शून्य होकर जगना पड़े। पद-गान तो स्फूर्ति, दिव्यता, प्रेरणा आदि ही प्रदान करता है।

बाबूजीके उत्तरसे चाचीजीका समाधान हो गया।

एक बार चाचीजी बीकानेर गयी हुई थीं। दुर्भाग्यसे वहाँ उनके पैरकी हड्डी टूट गयी। यह कष्टपूर्ण समाचार बीकानेरसे गोरखपुर आया, पर गोस्वामीजीने किसीके भी सामने यह बात उठायी ही नहीं कि मुझे बीकानेर जाना है। पहले अपने मनके भीतर बात उठे, तब न दूसरे लोगोंके बीच बात चलायी-उठायी जाये! उनके मनमें किसी प्रकारके संकल्प-विकल्पका उद्भव हुआ ही नहीं। इस समाचारको सुन करके भी वे ऐसे निर्लिप्त रहे, मानो यह समाचार बीकानेरसे आया ही नहीं। सच पूछा जाये तो उनके परिवारवाले अब कहने मात्रके लिये पारिवारिक रह गये थे। अब उनकी समस्त ममताके केन्द्र थे बाबूजी और बाबूजी ही थे उनकी पारिवारिकताकी परिधि।

तन-धन-जन का बन्धन टूटा, छूटा भोग-मोक्ष का रोग।
धन्य हुई मैं प्रियतम! पाकर, एक तुम्हारा प्रिय संयोग।।

ये पंक्तियाँ गोस्वामीजीके जीवनमें मूर्तिमान थीं। वस्तुतः गोस्वामीजीकी 'प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी'। गोस्वामीजीके इस समर्पण-भावपर बाबा मुग्ध हो गये। गोस्वामीजी तो बीकानेर गये नहीं। फिर बाबूजीने ही अपने व्यक्तियोंद्वारा उनकी चिकित्सा तथा प्लास्टरकी व्यवस्था करवायी।

गोस्वामीजीके भावमय जीवनके अनेक मधुर प्रसंग हैं। सन् १९४९ ई.में वृन्दावनसे गोरखपुर शहरमें रासमण्डली आयी। तब उस रासमण्डलीमें श्रीघनश्यामजी ठाकुरस्वरूप धारण किया करते थे। बाबाके साथ गोस्वामीजी रासलीला देखनेके लिये गये। लीला बड़ी सुन्दर हुई। लीलाका रंग गोस्वामीजीके मनपर चढ़ा हुआ था। लीला-दर्शनके एक-दो दिन बादकी बात है। गोस्वामीजी अपने घरके कमरेमें भूमिपर लेटे हुए थे। कमरेके एकान्तमें उनका मन उस दृष्ट लीलाके भाव-प्रवाहमें बहा जा रहा

था। उस प्रवाहकी छलक कभी-कभी नेत्रोंके कगारोंको छू लेती थी। तब वे उन भाव-विन्दुओंको धीरेसे पोंछ लेते थे। गोस्वामीजी चाहते तो यह थे कि कभी मेरे घर श्रीठाकुरस्वरूपजी पधारें, परंतु अपने संकोची स्वभावके कारण श्रीठाकुरजीको कहें तो कैसे कहें? इसी प्रकारके भावोंमें चुपचाप लेटे हुए गोस्वामीजीका मन निमग्न था कि तभी किसीने चरणोंका स्पर्श किया। नेत्र खोलकर देखा तो ठाकुरस्वरूप श्रीघनश्यामजी ही प्रणाम कर रहे हैं। अनेक सूत्रोंसे गोस्वामीजीकी गुण-गाथाको सुन करके उनके प्रति ठाकुरस्वरूप श्रीघनश्यामजीका पितृ-भाव हो गया था। उन्हें प्रणाम करते देखकर गोस्वामीजी विस्मय-पूरित हो गये। मन अनेक प्रकारके भावोंसे भर गया। ''यह असम्भव आज कैसे सम्भव हो गया? आज यह अकल्पनीय कृपा कैसे हो गयी? आज यह घर किस पुण्यके फलस्वरूप पवित्र हो गया?'' इन सब भावोंका वेग इतना प्रबल था कि गोस्वामीजी बहुत देरतक जडवत् पड़े रहे। अपनी जड़िमा स्थितिके कारण गोस्वामीजी ठाकुर श्रीघनश्यामजीका पर्याप्त समयतक प्राथमिक स्वागतोपचार नहीं कर पाये। ठाकुर श्रीघनश्यामजीको किसी प्रकारके स्वागत- सत्कारकी अपेक्षा नहीं थी, फिर भी उन्हें यह बड़ा अटपटा लगा कि गोस्वामीजी कुछ बोल क्यों नहीं रहे हैं। भावके शमित होनेमें कुछ समय तो लग ही गया। जब गोस्वामीजी कुछ प्रकृतिस्थ हुए, तब तो गोस्वामी दम्पतिने उनका जो स्वागत किया, जो लाड-चाव किया, उसकी कोई सीमा नहीं थी। गोस्वामीजीके उस स्वागतोल्लासको स्मरण करके ठाकुर श्रीघनश्यामजी आज भी पुलकित हो उठते हैं। तबसे यह एक परम्परा-सी ही बन गयी कि जब भी ठाकुर श्रीघनश्यामजी गोरखपुर आयें, उनको गोस्वामीजीके यहाँ एक बार भोजन करना ही है। यह क्रम गोस्वामीजीके जीवन भर अखण्ड रूपसे चला।

गोस्वामीजीके सामने प्रलोभन कम नहीं आये। सबसे बड़ा प्रलोभन था शंकराचार्य-पदका। श्रीजगन्नाथपुरी स्थित श्रीगोवर्धनपीठके पीठाधिपति अनन्त श्रीविभूषित शंकराचार्य पूज्य स्वामी श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराजने गोस्वामीजीकी साधुता और विद्वत्तासे प्रभावित होकर उन्हें अपना उत्तराधिकारी मनोनीत करनेकी अभिलाषा व्यक्त की। परम पूज्य शंकराचार्य श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज अद्भुत प्रतिभा-सम्पन्न उद्भट विद्वान थे। जब आप सोलह वर्षके किशोर थे, उस समय आपकी

धारावाहिक एवं श्रेष्ठ संस्कृत बोलनेकी क्षमताको देखकर दक्षिण भारतकी पण्डित सभाने आपको 'सरस्वती पुत्र' की उपाधिसे विभूषित किया था। सन् १९०४ ई. में आपने बीस वर्षकी आयुमें बम्बईमें एक ही वर्षमें एक साथ सात विषयों (संस्कृत, अँग्रेजी, दर्शन, गणित, इतिहास, विज्ञान तथा एक और विषय) में एम.ए. की परीक्षा दी और आप सातों विषयोंमें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए। केवल भारत ही नहीं, विश्वके किसी भी देशका कोई भी युवक इस प्रकारकी योग्यताका उदाहरण आजतक प्रस्तुत नहीं कर पाया है। जिस प्रकार पाणिनी व्याकरणके चौदह माहेश्वर सूत्रोंके आधारपर सारी संस्कृत व्याकरण पढ़ायी जाती है, उसी प्रकार आपने वेदोंका मन्थन करके ऐसे सोलह सूत्र छाँटकर निकाले हैं, जिनकेआधार पर आधुनिक कालकी गणितकी ऊँची-से-ऊँची शिक्षा दी जा सकती है। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजद्वारा आविष्कृत ये सोलह वैदिक सूत्र और आपके द्वारा अँग्रेजीमें लिखित 'वैदिक मैथेमेटिक्स' आज देश और विदेशके गणितज्ञोंके लिये आश्चर्य और आकर्षणके विषय बने हुए हैं। सन् १९६० ई. में पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज ब्रह्मलीन हुए थे। अपने महाप्रयाणके पूर्व उन प्रखर प्रतिभाशाली महापण्डित विश्व-विश्रुत पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराजने गोस्वामीजीको अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा था।

शंकराचार्य-पदका प्रस्ताव ज्यों ही सामने आया, त्यों ही गोस्वामीजीके अन्तरमें धर्म-संकटकी विषम स्थिति उत्पन्न हो गयी। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी अपने धर्माचार्य हैं, वे नित्य परम वन्दनीय हैं, ऐसे गौरवपूर्ण शंकराचार्य-पदके लिये चयन उनका कृपा-प्रसाद ही है, उनका संकेत मात्र ही आदेशके समकक्ष है और उनकी रुचि देखकर इस प्रस्तावको तुरंत स्वीकार कर लेना चाहिये था, परंतु गोस्वामीजीका हृदय बाबूजीसे विलग होनेके लिये प्रस्तुत नहीं था। फिर बड़े विनम्र शब्दोंमें अत्यधिक संकोचके साथ गोस्वामीजीने इस प्रस्तावको स्वीकार करनेमें अपनी विवशता व्यक्त कर दी।

गोस्वामीजीने शंकराचार्य-पदके प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया, अस्वीकृतिके हेतुको समझनेके लिये गोस्वामीजीकी मान्यताओंके सम्बन्धमें कुछ उल्लेख करना आवश्यक-सा प्रतीत हो रहा है। गोस्वामीजीकी सुदृढ़ धारणा थी कि शंकराचार्य- पदके मूलमें जो आदि-विभूति हैं, उन आदि-शंकराचार्यजी द्वारा धर्म-संस्थापनका जो महान कार्य उस समय हुआ था, वही महान कार्य इस समय अब बाबूजीके द्वारा हो रहा है। धर्मकी ग्लानिको दूर करनेके लिये एवं

सामाजिक प्रश्नोंपर व्यवस्था देनेके लिये जैसा पावन कार्य बाबूजी द्वारा हो रहा है; इतना ही नहीं उनके द्वारा जैसे विशाल श्रेष्ठ साहित्यकी सृष्टि हुई है तथा उनकी जैसी महाभावमयी भागवती स्थिति है, उन सबको देखकर यही लगता है कि शंकराचार्य-रामानुजाचार्य जैसे धर्म-संस्थापक आचार्योंकी, मनु-याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकार मुनियोंकी, तुलसीदास-सूरदास जैसे महाभक्त कवियोंकी एवं चैतन्यमहाप्रभु-वल्लभाचार्य जैसे रसज्ञ महान विभूतियोंकी परम्परामें बाबूजी भी परिगण्य हैं।

गोस्वामीजी भली भाँति जानते थे कि विशाल सत्साहित्यकी रचनाके द्वारा, शास्त्रीय ग्रन्थों एवं पत्रिकाके प्रकाशनके द्वारा, वैयक्तिक पत्र एवं ऐकान्तिक परामर्शके द्वारा, विभिन्न स्थानों एवं पवित्र तीर्थोंकी यात्राके द्वारा, सत्संग-सत्र एवं उत्सवोंके आयोजनके द्वारा और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात, अपनी करनी एवं रहनीके द्वारा बाबूजी समाजमें आध्यात्मिकता-धार्मिकता-आस्तिकता-नैतिकता- सात्त्विकताके संस्थापनका ही कार्य कर रहे हैं। बाबूजीद्वारा यदि एक ओर धर्म-संस्थापन एवं समाजोन्नयनका कार्य हो रहा है तो दूसरी ओर सरल भाषामें भक्ति-राज्यके रस-सिद्धान्तोंका निरूपण भी हो रहा है। और केवल निरुपण ही नहीं, उनका जीवन उस रस-सिन्धुमें सर्वथा आशिख निमग्न है। गोस्वामीजीने स्वयं देखा है कि उस निमग्नतामें प्रगाढता आनेपर बाबूजीको अपने शरीरका भान नहीं रहता था। इस प्रकारकी नितान्त शरीर-भान-रहित भाव-समाधिकी स्थितिमें उनके कई-कई घंटे निकल जाया करते थे। इसके अतिरिक्त, जब शरीरका भान रहता था, उस समय भी उनका मानस, भावके बहुत ऊँचे स्तरपर प्रतिष्ठित रहा करता था। सच्ची बात यह है कि बाबूजीके व्यक्तित्वका सम्पूर्ण अस्तित्व भक्ति-रसमें सर्वथा निमग्न है और इसीके फलस्वरूप उनके द्वारा धर्म-संस्थापन एवं समाजोन्नयनका अद्‌भुत महान् कार्य हो पा रहा है। ऐसा व्यक्तित्व भला कहाँ देखने-सुननेको मिलता है? गोस्वामीजीकी परम सुदृढ़ आस्था थी कि बाबूजी इस युगकी महान् विभूति हैं। भारतीय संत-परम्परामें उनका स्थान बहुत ऊँचा है। वे 'ज्ञानोत्तर भाव-राज्य'में नित्य प्रतिष्ठित हैं। जिस 'पराभक्ति' की प्राप्ति श्रीगीताजीमें ब्रह्मभूत होनेके बाद बतलायी गयी है और जिस भक्तिके द्वारा मनुष्य भगवानको जानकर उसमें प्रविष्ट हो जाता है, उनके साथ घुल-मिलकर उनकी लीलाका एक अंग हो जाता है, उनका प्रतिरूप बन जाता है, वह तथ्य बाबूजीके व्यक्तित्वके अन्दर अक्षरशः मूर्त है। यही नहीं, श्रीकृष्ण-प्रेमकी उच्चतम भूमिकामें वे स्थित हैं।

उनकी मन-बुद्धि-वाणी सब कुछ श्रीकृष्णमय हो गये हैं। विशुद्ध प्रेमभक्तिका आदर्श एवं भगवन्नामकी महिमाको प्रतिष्ठित करनेके लिये ही जगतमें बाबूजीका आविर्भाव हुआ है। 'महिमा जासु जाइ नहिं बरनी' ऐसे बाबूजीके आन्तरिक और वास्तविक रूपको मनकी आँखोंसे देख-देख करके गोस्वामीजीके हृदयमें 'नित नव चरन उपज अनुरागा'। बाबूजीद्वारा जो महान कार्य हो रहा है तथा बाबूजीका जैसा अनुपम व्यक्तित्व है, उसके सम्बन्धमें गोस्वामीजीको कोई भ्रान्ति नहीं थी। बाबूजीके प्रति इस प्रकारकी निर्भ्रान्त आस्था इतनी अधिक सुदृढ़ थी और बाबूजीके पास रहनेकी भावना इतनी अधिक प्रबल थी कि शंकराचार्य-पदका सामाजिक सम्मान एवं आध्यात्मिक गौरव गोस्वामीजीको अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका। बाबूजीकी संनिधिसे दूर जाना उनको अभीष्ट था ही नहीं। गोस्वामीजी नित्य बाबूजीके सांनिध्यमें रहे और जीवनके अन्तिम क्षण तक गीतावाटिकामें उनका निवास रहा। गोस्वामीजीकी निष्ठा सदा ही बाबाकी वाणी द्वारा चर्चा एवं सराहनाका विषय बनी रही।

बाबा गोस्वामीजीकी आस्थाओंकी बड़ी सराहना किया करते थे, इस सम्बन्धमें एक बड़ा सरस प्रसंग षोडश गीतको लेकर है। षोडशगीतके दसवें पदकी छठवीं पंक्तिमें नित्य-निकुञ्जेश्वरी श्रीराधाकी उक्ति है—

आठों पहर बसे रहते तुम मम मन-मन्दिरमें भगवान।

बाबाके मनमें ऐसा भाव स्फुरित हुआ कि इस पंक्तिमें 'भगवान' शब्दके स्थानपर कोई अन्य शब्द अर्थात् ऐश्वर्य-भावसे रहित प्रेमिल शब्द होता तो पदकी भावमयता और भी सरसीली हो जाती। बाबाकी तथा बाबूजी, दोनोंकी ही स्पष्ट मान्यता है कि नित्य-निकुञ्जेश्वरी श्रीराधा एवं नित्य-निकुञ्जेश्वर श्रीकृष्ण साक्षात् भगवती-भगवान हैं, परंतु परम प्रेमके मधुर राज्यमें उनकी यह भगवत्ता प्रसुप्त रहती है। इन परस्पर नित्य परम प्रेमी-प्रेमास्पद युगलका जो परम मधुर प्रेम-सिन्धु है, उस सिन्धुके अतल-तलमें उनकी भगवत्ता छिपी रहती है। उस भगवत्ताकी अभिव्यक्ति क्वचित् ही होती है और होती है तभी, जब कभी किसी लीलाको सम्पन्न करा देनेमें उस भगवत्ताकी आवश्यकता हो। कभी-कभी लीलाको सम्पन्न करा देनेके लिये ही उस ऐश्वर्य शक्ति भगवत्ताको किंचित् सेवा करनेका अवसर मिल जाता है, अन्यथा वह भगवत्ता सर्वथा-सर्वथा प्रसुप्त-प्रच्छन्न रहती है। षोडश गीत सच्चिन्मय प्रेम-राज्यकी परम सरस वस्तु है, अतः बाबाने अपनी भावनाको समझाते हुए बाबूजीसे कहा— इस पंक्तिमें 'भगवान' शब्दके स्थानपर यदि कोई अन्य सरस शब्द प्रयुक्त हो तो इस पदकी सरसता और भी अधिक

समृद्ध हो जायेगी।

बाबूजीने कहा— आप जैसा कहें, जो भी कहें, मैं वैसा ही कर दूँगा।

बाबाके मनमें उस समय जो पंक्ति स्फुरित हुई, वही पंक्ति बाबाने बाबूजीको बता दी— 'आठों पहर सरसते रहते तुम मन सरवरमें रसवान'।

बाबूजीने बाबाके सुझावकी बड़ी सराहना की और यह पंक्ति ज्यों-की-त्यों स्वीकार कर ली। पदमें पुरानी पंक्तिके स्थानपर इस नवीन पंक्तिको रख दिया। बाबूजी इस परिवर्तनसे प्रसन्न थे।

फिर यह बात बाबाने गोस्वामीजीको बतलायी। गोस्वामीजीने विनम्र शब्दोंमें कहा— बाबा! क्या यह परिवर्तन आवश्यक है?

बाबाने गोस्वामीजीको अपनी भावना बतलायी, जिस प्रकार उन्होंने बाबूजीको बतलाया था। यह बात नहीं कि गोस्वामीजी इस भाव-गरिमाको समझ नहीं रहे हों। ऐसी समझ होनेके बाद भी अत्यधिक दैन्यके साथ गोस्वामीजी अपने मनकी बात कहने लगे— बाबा! मैं आपकी मान्यताको सर्वांशमें स्वीकार करता हूँ, पर मेरे मनमें भी एक छोटी-सी बात है। अपनी आस्थाके अनुसार मैं षोडश गीतको और उसकी शब्दावलीको साधारण स्तरकी वस्तु नहीं समझता। ये पद मात्र काव्य-रचना नहीं है। श्रीभाईजीको भाव-समाधिकी स्थितिमें जैसी लीला और जैसे उद्‌गार उनके दृष्टि-पथपर एवं श्रुति-पथपर आविर्भूत हुए, वे ही किसी अचिन्त्य कृपासे इन पदोंकी शब्दावलीकी सीमामें सिमट आये हैं। षोडश गीतका सम्बन्ध उस भाव-समाधिकी स्थितिसे होनेके कारण इनमें किसी प्रकारका संशोधन-परिवर्तन मुझे जँच नहीं रहा है। मेरे विचारसे मूल पंक्तिको ज्यों-का-त्यों रहने देना चाहिये।

बाबाको गोस्वामीजीके विचार बड़े प्रिय लगे और इन विचारोंको बाबाने हृदयसे सम्मान दिया। तदुपरान्त उस दसवें पदमें किसी भी प्रकारके परिवर्तनकी बात समाप्त हो गयी। हाँ, बाबूजीने इतना अवश्य कर दिया कि बाबाद्वारा बतलायी गयी पंक्तिको 'एक दूसरा पाठ' के रूपमें स्वीकार कर लिया। यह दूसरा पाठ भी षोडश गीतके दसवें पदके अन्तमें छपा रहता है।

जिस तरह वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा और नन्दनन्दन श्रीकृष्ण दिखलायी देनेमें दो हैं, इसके बाद भी दोनों वस्तुतः एक ही हैं, ठीक उसी स्तरकी मान्यता थी गोस्वामीजीकी बाबा और बाबूजीकी प्रति। 'एक तत्त्व दो तनु धरैं' बाबा और बाबूजीमें उन्होंने कभी भेद माना ही नहीं। इसका प्रमाण है गोस्वामीजीका

पादुका-पूजन। 'प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।।' बाबाकी कुटियाका अति एकान्त स्थल, उस स्थलके किन्हीं परम पुण्यमय पावन क्षणोंमें बाबासे उनकी चरण-पादुका गोस्वामीजीको प्राप्त हुई और गोस्वामीजीने उनको अपने मस्तकपर धारण कर लिया। बाबाकी उस चरण-पादुकाकी अर्चना गोस्वामीजी आजीवन करते रहे और अब उन्हीं चरण-पादुकाकी अर्चना किसी अचिन्त्य सौभाग्यसे बहिन विमलाको प्राप्त है। बाबाकी यह चरण-पादुका आज भी बहिन विमलाके पूजाघरमें विराज रही है, जहाँ उनकी नित्य अर्चना होती है।

अपने जीवनकी अन्तिम अवधिमें गोस्वामीजी सात-आठ मास बहुत अधिक अस्वस्थ रहे। गीतावाटिकाके अति समीप एक मकानमें गोस्वामीजी रहा करते थे। उनकी व्याधि और पीड़ाको देखकर बाबा उन्हें गीतावाटिका ले आये। गीतावाटिकाके जिस भवनमें बाबूजी रहा करते थे, उसी भवनके एक कमरेमें गोस्वामीजीको रखा गया। गोस्वामीजीकी चिकित्सा एवं सँभाल पूर्ण तत्परताके साथ होने लग गयी। रुग्ण शय्यापर पड़े हुए गोस्वामीजीका शरीर अत्यधिक कष्टसे पीड़ित था। रुग्ण गोस्वामीजीकी चिकित्सा और परिचर्यामें जितना समय और जैसा ध्यान बाबाने दिया, उसको देखकर विस्मय होता है। इस कष्टकी स्थितिमें भी गोस्वामीजीके अधरोंपर एक ही वाक्य था— नाथ! तुम्हारी ही इच्छा पूर्ण हो।

गोस्वामीजीकी भीषण रुग्णताको देखकर बाबाने कहना आरम्भ कर दिया था कि अब चलाचलीका मेला है और गोस्वामीजी अधिक नहीं रह पायेंगे। एक बार परिचर्या-रत व्यक्तियोंको ऐसा लगा कि गोस्वामीजी सम्भवतः करवट बदलना चाहते हैं अथवा बोलकर कुछ कहना चाहते हैं। उन व्यक्तियोंने पूछा— आप क्या चाहते हैं?

उनसे गोस्वामीजीने कहा— मैं कुछ नहीं चाहूँ, बस, यही चाहता हूँ।

असह्य वेदनाके होते हुए भी गोस्वामीजीने यह नहीं कहा कि उन्हें औषधि अथवा उपचारकी आवश्यकता है। कष्टकी अधिकताको देखकर यदि कोई सहानुभूति दिखलाता तो गोस्वामीजी यही कहा करते थे— प्रभुका प्रत्येक विधान मंगलमय है। इस रुग्णतामें भी प्रभुका मंगल स्पर्श क्रियाशील है और उसीका अनुभव होता रहता है।

इस कष्टकी स्थितिमें भी गोरखपुर विश्वविद्यालयके संस्कृत विभागके

प्राध्यापक आदरणीय श्रीहेमचन्द्रजी जोशी जब गोस्वामीजीको भावपूर्ण पद सुनाया करते थे अथवा जब कभी गीतावाटिकाकी श्रद्धाभिभूत बहिनें लीला-पद सुनाया करती थीं तो गोस्वामीजीके कपोल अश्रु-सिक्त हो उठते थे। शरीर भोग रहा था कष्ट, पर मन डूब रहा था भाव-सिन्धुमें।

'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्' सूत्रके द्वारा देवर्षि नारदने यह प्रतिपादित किया है कि भगवान और भक्तमें भेदका अभाव है। पूज्य श्रीसेठजी (पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ने लिखा है कि 'भगवानके भक्त भगवत्स्वरूप होते हैं। भगवानकी तरह महापुरुषोंके ध्यानसे भी कल्याण हो सकता है।' बाबूजीने लिखा है कि 'जो भक्तोंका सेवन करते हैं, वे भगवानका ही सेवन करते हैं।' ये सब सिद्धान्त-वाक्य हैं, जो किसी व्यक्ति-विशेषको लक्ष्य करके नहीं लिखे गये। सिद्धान्तका विवेचन और निरूपण करते-करते इन महाभागवतोंके द्वारा यह सनातन सत्य स्वतः अभिव्यक्त हो उठा और इस महान सत्यके साकार स्वरूप थे गोस्वामीजी। ऐसा लगता है कि श्रीरामचरितमानसकी अर्धाली 'राम ते अधिक राम कर दासा' को ही गोस्वामीजीने अपने जीवनका आधार बना लिया हो। जीवनका अवसान समीप देखकर एक स्वजनने बाबूजीका चित्र गोस्वामीजीके सामने दीवालपर लगा दिया, जिसे वे देखते रह सकें। इसके कुछ दिन बाद एक अन्य स्वजनने गोस्वामीजीसे पूछा— यदि आप आज्ञा दें तो आपके सामने दीवालपर श्रीराधाकृष्णका चित्र लगा दूँ।

गोस्वामीजीने प्यारभरे स्वरमें कहा— मेरे लिये श्रीभाईजीमें और श्रीराधाकृष्णमें कोई अन्तर नहीं है।

फिर बाबूजीका चित्र ही सदा गोस्वामीजीके समक्ष विराजित रहा।

गोस्वामीजीने एक स्थानपर स्वयं लिखा है— मेरा श्रीभाईजीके साथ चालीस वर्षसे ऊपरका सम्पर्क मेरे जीवनकी एक अमूल्य निधि है, जो मुझे अपने जन्मार्जित सुकृतोंके फलस्वरूप उन्हींकी अहैतुकी कृपासे अनायास प्राप्त हुई थी। इस अवधिमें उन्होंने जैसा अद्भुत स्नेह दिया और जिस प्रकार मेरा लाड रखा, उसे शब्दोंद्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। उनके इस ऋणसे मैं जन्म-जन्मान्तरमें भी उऋण नहीं हो सकता और न होना ही चाहता हूँ। भव-सरिताकी प्रबल धारामें बहते हुए मुझ पामरको उन्होंने अपनी सहज कृपासे उबार लिया और भगवत्कृपाका अधिकारी बना दिया। मेरी त्रुटियोंकी ओर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया और मेरे द्वारा उन्हींकी प्रेरणासे हुए तनिक-से भी

अनुकूल आचरणकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। वे मेरे बड़े भाई, सखा एवं स्वामी ही नहीं, मेरे पथ-प्रदर्शक जीवन-सर्वस्व थे और हैं। उनकी स्मृति मात्रसे हृदय भर आता है। बस, शेष जीवन श्रीभाईजी और उनके अपने श्रीराधामाधवकी स्मृतिमें बीत जायँ, यही अभिलाषा है।

गोस्वामीजी रुग्ण शय्यापर पड़े-पड़े ही कमरेकी खिड़कीसे जब-तब बाबूजीकी पावन समाधिका दर्शन कर लिया करते थे। यह समाधि इत्र-मिश्रित-पीत-मिट्टीसे पुती रहती है। महाप्रस्थान करनेके कुछ दिनों पूर्व गोस्वामीजीने समीपस्थ स्वजनोंके समक्ष अपनी अन्तिम अभिलाषा व्यक्ति करते हुए कहा– मेरे जीवनधन श्रीभाईजीकी पावन समाधिपर जो पीली मिट्टी पुती हुई है, वह मेरे प्रियतम श्रीकृष्णके पीत दुकूलका प्रतीक है तथा मेरे प्राणवल्लभकी पावन स्मृतिको सतत सजीव बनाये रहती है। मेरे शवका अन्तिम स्नान उस पवित्र मिट्टीको धोकर एकत्रित किये गये जलसे ही करवाया जाये।

परम्परा ऐसी है कि शवका अन्तिम स्नान गंगा-जलसे करवाया जाना चाहिये, परतु इन अनोखे समर्पितात्माकी अभिलाषा थी कि गंगा-जलसे स्नान कराये जानेके उपरान्त भी एक और स्नान अपने जीवनधनकी पावन समाधिके प्रसादी जलसे करवाया जाये। गोस्वामीजीने सारे जीवन वैष्णव सदाचार, धर्म- मर्यादा, साम्प्रदायिक नैष्ठिकता, कुल-परम्पराको महत्त्व प्रदान किया था, परंतु आज वे सब एक किनारे हो गये और सर्वोपरि स्थान मिला प्रीतिकी निराली रीतिको।

विदाईको समीप देखकर गोस्वामीजीने जाने-अनजाने हुई भूलोंके लिये और इच्छा-अनिच्छापूर्वक किये गये कटु व्यवहारोंके लिये सभीसे क्षमा याचना की। जिन स्वजनोंने अन्तिम रुग्णावस्थाके समय परिचर्या की थी, उनकी सेवा-भावनाको देखकर गोस्वामीजीका हृदय भर-भर आ रहा था। उन्होंने सजल नेत्रोंसे और उन्मुक्त हृदयसे सभीको आशीर्वाद दिया तथा कहा– मैं तो सर्वथा अकिञ्चन हूँ। मेरे पास इस सेवाके बदलेमें दे सकने योग्य कुछ भी नहीं है, परंतु मेरे आराध्य इस एक-एक सेवाका अनन्त गुणा पुरस्कार तुम सबको अवश्य देंगे, यह मेरे अन्तरकी अन्तिम आशीष है।

बाबा और बाबूजीमें सर्वथा अभेद माननेके कारण गोस्वामीजीने बाबाके समक्ष एक बार अपनी एक अन्तरंग अभिलाषा व्यक्त की–

जीवनके अन्तिम श्वासके समय यह शरीर आपसे संपृक्त रहे।

इस अभिलाषाको सुनकर बाबाने एक मधुर मुस्कान बिखेर दी। बाबाने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, परंतु गोस्वामीजीके इस मनोरथको अपने हृदयके कोनेमें छिपाकर रख लिया। हृदयकी गुहामें छिपाकर रखे गये इस तथ्यकी जानकारी भला किसी अन्यको कैसे हो सकती थी? अत्यधिक रुग्ण गोस्वामीजीकी स्थिति ज्यों ही गम्भीर होने लगी और ऐसा लगने लगा कि गोस्वामीजी अब जानेवाले हैं, त्यों ही दौड़कर बाबाको सूचना दी गयी। बाबा तुरंत आये। गोस्वामीजीको भूमिपर नीचे उतार लिया गया। अब कुछ ही श्वास शेष थे।

बाबाने अपने दाहिने चरणके अंगुष्ठको गोस्वामीजीके पैरोंके तलवेके निम्न भागमें एड़ीके पास भली प्रकार सटा दिया और बाबासे संपृक्तावस्थामें ही गोस्वामीजीने अन्तिम श्वास ली। भावातिरेककी गम्भीर दशामें बाबाके नयन भी अपने आप मुँद गये।

सं. २०३१ वि. वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी नृसिंह चतुर्दशी तिथि (५ मई १९७४) के दिन गोस्वामीजीके जीवनका पटाक्षेप हो गया। गोस्वामीजी इस भूतलपर लगभग ७४ वर्ष रहे। गोस्वामीजीने जो अपनी अन्तिम अभिलाषा व्यक्त की थी, उसको पूर्ण करनेके लिये बाबूजीकी पावन समाधिको प्रक्षालित करके प्रसादी जलसे उनके शवको स्नान कराकर वह स्मरणीय-वन्दनीय पाञ्चभौतिक कलेवर चिताकी पावन अग्निको अर्पित कर दिया गया।

महाप्रस्थानके कुछ समय बाद गोस्वामीजी अपने दिव्य स्वरूपसे बाबाको दिखलायी दिये थे। बाबा बतला रहे थे कि उनके उस दिव्य देहकी कान्ति अनुपम थी और उनके नेत्रोंमें अतीव प्रसन्नता नृत्य कर रही थी। गोस्वामीजीके दिव्य स्वरूपको देखकर बाबाको बड़ा आह्लाद हुआ। बाबाने एक और अन्तरंग बात बतलायी। निकुञ्जलीलामें नित्य निकुञ्जेश्वरी श्रीप्रियाजीकी रसमयी सेवामें श्यामला मञ्जरी सतत संलग्न रहती हैं और गोस्वामीजीकी अन्तिम परिणति उन श्यामला मञ्जरीके रूपमें ही हुई है। इस रहस्योद्घाटनने सभी स्वजनोंको परम मोद प्रदान किया। श्रीप्रिया-प्रियतमकी निकुञ्ज-लीलामें लीन पूज्य श्रीगोस्वामीजीकी जय, बार-बार जय।

* * * * *

प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न श्रीराधा बाबा की जीवन-झाँकी

१. १६ जनवरी १९१३ (वि.सं. १९६९ पौष शु. ९)	आविर्भाव
२. सन् १९२८-३१	राजनैतिक जीवन एवं जेल यात्रा
३. सन् १९३२	कलकत्तेमें विद्यालयी शिक्षाका पुनः शुभारम्भ
४. १-१-१९३४ से १४-१०-१९३५	भगवानके नाम पत्र लिखना
५. १२ अक्टूबर १९३५ (वि.सं. १९९२ आश्विनी पूर्णिमा)	संन्यास-ग्रहण
६. अप्रैल १९३६	संन्यासी वेषमें इण्टरमीडिएटकी परीक्षा देकर विद्यालयी शिक्षासे विमुखता
७. १९३६ अप्रैल से सितम्बर तक	अज्ञात वास, घोर एकान्त साधना एवं अद्वैत तत्त्वकी दृष्टिसे परम सिद्धि, कोढ़ियोंके मध्य बैठना, स्वामी श्रीरामसुखदासजी से मिलन एवं सत्संग
८. अक्टूबर १९३६	श्रीसेठजीसे मिलन तथा उनके द्वारा बाबूजीसे मिलनेकी प्रेरणा
९. २७ अक्टूबर १९३६ (वि.सं. १९९३ आश्विन शु. १२)	गीतावाटिकामें सर्वप्रथम आगमन तथा बाबूजीसे प्रथम मिलन, बाबूजी द्वारा चरण-स्पर्श एवं चरण-स्पर्शके माध्यमसे साकारोपासनाका बीजारोपण

१०. ३० अक्टूबर १९३६; (वि.सं.१९९३ आश्विनी पूर्णिमा)	गीतावाटिकामें इमली वृक्षके नीचे दिव्यानुभूति
११. नवम्बर १९३६; (वि.सं.१९९३ कार्तिक मास)	गोरखपुरमें राप्ती नदीके किनारे श्रीहनुमानगढ़ीमें वास करते हुए भगवान श्रीकृष्णके दर्शन
१२. नवम्बर या दिसम्बर १९३६	श्रीसेठजीके साथ रहना तथा लगभग अढ़ाई वर्षोंतक निरन्तर साथ रहकर श्रीमद्भगवद्गीताकी टीकाके लेखन-कार्यमें सहयोग देना
१३. सन् १९३७	गीताप्रेसके कमरेमें गोपी-वपुका अवतरण एवं तिरोभाव
१४. २६ या २७ या २८ अप्रैल १९३९, (वि.सं. १९९६ वैशाख मास)	बाँकुड़ानगरमें क्षेत्र संन्यासका संकल्प एवं भगवान श्रीकृष्ण द्वारा क्षेत्र-संन्यासका नवीन अर्थ बतलाया जाना, फिर पूज्य बाबूजीके वपुको सचल वृन्दावन बतलाना
१५. मई १९३९	फखरपुर ग्राममें श्रीमातृ-चरणके अन्तिम दर्शन
१६. ११ मई १९३९; (वि.सं.१९९६)	बाबूजीके साथ नित्य रहनेका संकल्प
१७. जून या जुलाई या अगस्त १९३९	पूज्य बाबूजीका सूक्ष्म देहसे पधारकर बाबाको 'दीक्षा' देना
१८. सन् १९३९ या ४० में	श्रीमञ्जुलीला-भावकी 'भाव-दीक्षा' (यह प्रथम भाव दीक्षा)

१९. २३ अगस्त १९४१, (वि.सं. १९९८ भाद्र शुक्ल ८)	दिल्लीमें प्रथम बार श्रीराधाष्टमी पर्व अति सूक्ष्म रूपसे मनाना
२०. सम्भवतः सन् १९४१-४२ में	पूज्य बाबूजीके संकेतपर प्रवचनका विसर्जन और वाणीका मौन
२१. सन् १९४२-४३	'केलिकुञ्ज' की लीलाओंका तथा 'प्रेम-सत्संग सुधा माला' का लेखन
२२. सन् १९४३-४४ में	श्रीमञ्जुश्यामा भावकी 'भाव दीक्षा' (यह द्वितीय भाव दीक्षा)
२३. सन् १९४४-४५ में	'राधा' नामके जपसे लगाव
२४. १९ सितम्बर १९४५, (वि.सं. २००२ भाद्र शु.८)	गीतावाटिकामें प्रथम श्रीराधाष्टमी उत्सव; श्रीराधाष्टमीके दिन 'श्रीकाम-गायत्री मंत्र'से अर्चना
२५. सन् १९४६ से कई वर्षोंतक	'श्रीकृष्णलीला चिन्तन' 'जगज्जननी श्रीराधा' आदि-आदि अनेक भावपूर्ण कृतियोंका प्रणयन
२६. सन् १९४९-५०	पूज्य बाबूजीकी आयु-वृद्धिके लिये देवाराधन
२७. २६ सितम्बर १९५० (शरद् पूर्णिमा)	'देवर्षि पर श्रीवृषभानुनन्दिनीकी कृपा' नामक नाटिकाका अभिनय
२८. सम्भवतः सन् १९५० में	भगवान श्रीकृष्ण द्वारा भगवती श्रीत्रिपुरसुन्दरीकी अर्चना करनेके लिये निर्देश
२९. २० जनवरी १९५१	गलेकी हड्डी टूटनेसे भगवतीकी अर्चनामें विघ्न
३०. ९ मई १९५१; (वि.सं. २००८ वैशाख शु. ३) (अक्षय तृतीया)	भगवती त्रिपुरसुन्दरी द्वारा निज मंत्रका दान, (यह तीसरी भाव दीक्षा)
३१. सन् १९५१-५४	अठारह पुराणोंका श्रवण

३२. २७ जनवरी १९५६ से २६ अप्रैल १९५६ तक	तीर्थयात्रा ट्रेन द्वारा तीन धामोंकी पावन यात्रा
३३. १९ अक्टूबर १९५६, (वि. सं. २०१३ शरद् पूर्णिमा)	गीतावाटिकामें प्रथम काष्ठमौनव्रत
३४. ८-९ अप्रैल १९५७, (वि. सं. २०१४ चैत्र शुक्ल अष्टमी नवमीकी संधि वेला)	'राधा भाव' में प्रतिष्ठा, (यह चौथी भावदीक्षा)
३५. १ सितम्बर १९५७; (वि. सं. २०१४ भाद्र शु. ८ रविवार)	रतनगढ़में विशिष्ट श्रीराधाष्टमी, त्रिमासीय रविवार, 'रसोपासना'के दिव्य मंत्रोंका अलौकिक रीतिसे अवतरण
३६. जनवरी १९५८	मथुरा स्थित बिड़ला धर्मशालामें 'जय जय प्रियतम' काव्यके लेखनकी प्रेरणा तथा काष्ठ मौनावधिमें प्रणयन
३७. सन् १९६३-६४ में	रासलीला द्वारा 'षोडश गीत'में प्राण प्रतिष्ठा
३८. १९ जनवरी १९६४ (वसन्त पंचमी)	भगवती श्रीविष्णुप्रियाजीका जन्मोत्सव मनाना
३९. २२ सितम्बर १९६५	गीतावाटिकामें स्थापित श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमाका शुभारम्भ
४०. ७ अप्रैल १९६७	द्वितीय काष्ठमौन व्रत
४१. २२ मार्च १९७१	पूज्य बाबूजीका महाप्रयाण तथा पुरानी कुटियाका परित्याग
४२. १६ फरवरी १९७५	बाबाकी प्रेरणासे कैंसर अस्पतालकी स्थापनाका संकल्प
४३. २६ अगस्त १९७६, (वि. सं. २०३३ भाद्र शुक्ल १)	बाबूजीकी समाधिपर बन रहे स्मारकके निर्माण कार्यकी पूर्णतापर हर्षोल्लास

४४. २० अगस्त १९७७	लकवाका झटका
४५. ७ दिसम्बर १९७८	तृतीय काष्ठ मौन व्रत
४६. सन् १९८२ एवं ८४	दो अष्टयाम लीलाओंका आयोजन
४७. ८ फरवरी १९८५ से १७ फरवरी १९८५ तक	पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराजकी श्रीमद्भागवत कथाका श्रवण
४८. २१ जून १९८५	श्रीराधाकृष्ण साधना मन्दिरमें प्राण-प्रतिष्ठाका विशद आयोजन
४९. ५ अक्टूबर १९९१ से २३ सितम्बर १९९२ तक	पूज्य बाबूजीका जन्म शताब्दी उत्सव सारे देशमें वर्षभर यत्र-तत्र मनाया जाना
५०. २६ सितम्बर १९९२	पूज्या मैयाका महाप्रयाण
५१. १३ अक्टूबर १९९२	पूज्या मैयाके महाप्रयाणके उपरान्त श्राद्ध-कर्मकाण्डकी प्रक्रियाके सम्पन्न होते ही पूज्य बाबाकी महाप्रयाण लीला

* * * * *

पुस्तक प्राप्ति स्थान

: गोरखपुर :
साहित्य मन्दिर
श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति,
पो. गीतावाटिका,
गोरखपुर - २७३००६.

मनमोहन जाजोदिया
अजय सलेक्शन, बैंक रोड,
गोरखपुर - २७३ ००१

:वाराणसी:
श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मृति सेवा ट्रस्ट,
दुर्गाकुण्ड रोड,
वाराणसी

:उदयपुर:
दिनेश कुमार अग्रवाल
आर ५/३१, जयश्री कालोनी,
तिलक स्कूल रोड, धूलकोट,
उदयपुर - ३१३ ००१

: मुम्बई :
भारतीय ग्रामोद्योग वस्त्र भण्डार
सिंहानिया वाडी,
१८७, दादी सेठ अग्यारी लेन,
मुम्बई - ४०००००२

:वृन्दावन:
खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्बा बाजार,
वृन्दावन - २८११२१

:जयपूर:
धार्मिक साहित्य सदन
बुलियन बिल्डींग के अन्दर,
हल्दियोंका रास्ता,
जौहरी बाजार,
जयपुर (राज.) ३०२००३

: स्वर्गाश्रम:
विष्णु पुस्तक भण्डार
पो. स्वर्गाश्रम,
(ऋषिकेश) - २४९३०४,
जि. पौढ़ी गढ़वाल

: अयोध्या:
श्रीस्वामीशरण उपाध्याय
श्रीसीताराम भवन,
गोलाघाट चौराह,
अयोध्या (उ.प्र.)

: पटना:
श्रीनागा बाबा
ठाकुरवाडी,
मथुरा प्रसाद सिन्हा रोड,
कदम कुँआ, पटना (बिहार)

॥ श्रीहरिः ॥

गीतावाटिका प्रकाशन

पो. - गीतावाटिका, गोरखपुर - २७३ ००६

द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

1.	श्रीभाईजी - एक अलौकिक विभूति	श्रीभाईजी एवं श्रीसेठजीकी संक्षिप्त जीवनी	60.00
2.	भाईजी चरितामृत	भाईजीके शब्दोंमें उनके जीवन प्रसंग	50.00
3.	सरस पत्र	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
4.	व्रजभावकी उपासना	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	25.00
5.	परमार्थकी पगडंडियाँ	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
6.	सत्संगवाटिकाके बिखरे सुमन	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
7.	वेणुगीत	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	35.00
8.	समाज किस ओर जा रहा है	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
9.	प्रभुको आत्मसमर्पण	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
10.	भगवत्कृपा	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	5.00
11.	श्रीराधाष्टमी जन्म-व्रत महोत्सव	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	5.00
12.	शान्तिकी सरिता	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	20.00
13.	रासपञ्चाध्यायी	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	35.00
14.	पारमार्थिक और लौकिक सफलताके सरल उपाय	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	25.00
15.	क्या, क्यों और कैसे ?	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
16.	साधकोंके पत्र	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
17.	रोगोंके सरल उपचार	सम्पादक : भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	35.00
18.	भगवन्नाम और प्रार्थनाके चमत्कार	सम्पादक : भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
19.	मेरी अतुल सम्पति	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	10.00
20.	श्रीशिव - चिन्तन	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	25.00
21.	अन्तरंग वार्तालाप	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार	30.00
22.	आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ	श्रीराधा बाबा	35.00
23.	महाभागा व्रजदेवियाँ	श्रीराधा बाबा	30.00
24.	केलि - कुञ्ज	श्रीराधा बाबा	70.00
25.	परमार्थके सरगम	श्रीराधा बाबा	30.00
26.	पद-रत्नाकर - एक अध्ययन	श्रीश्यामसुन्दर दुजारी	30.00
27.	दिव्य हस्तलिखित संकेत		50.00

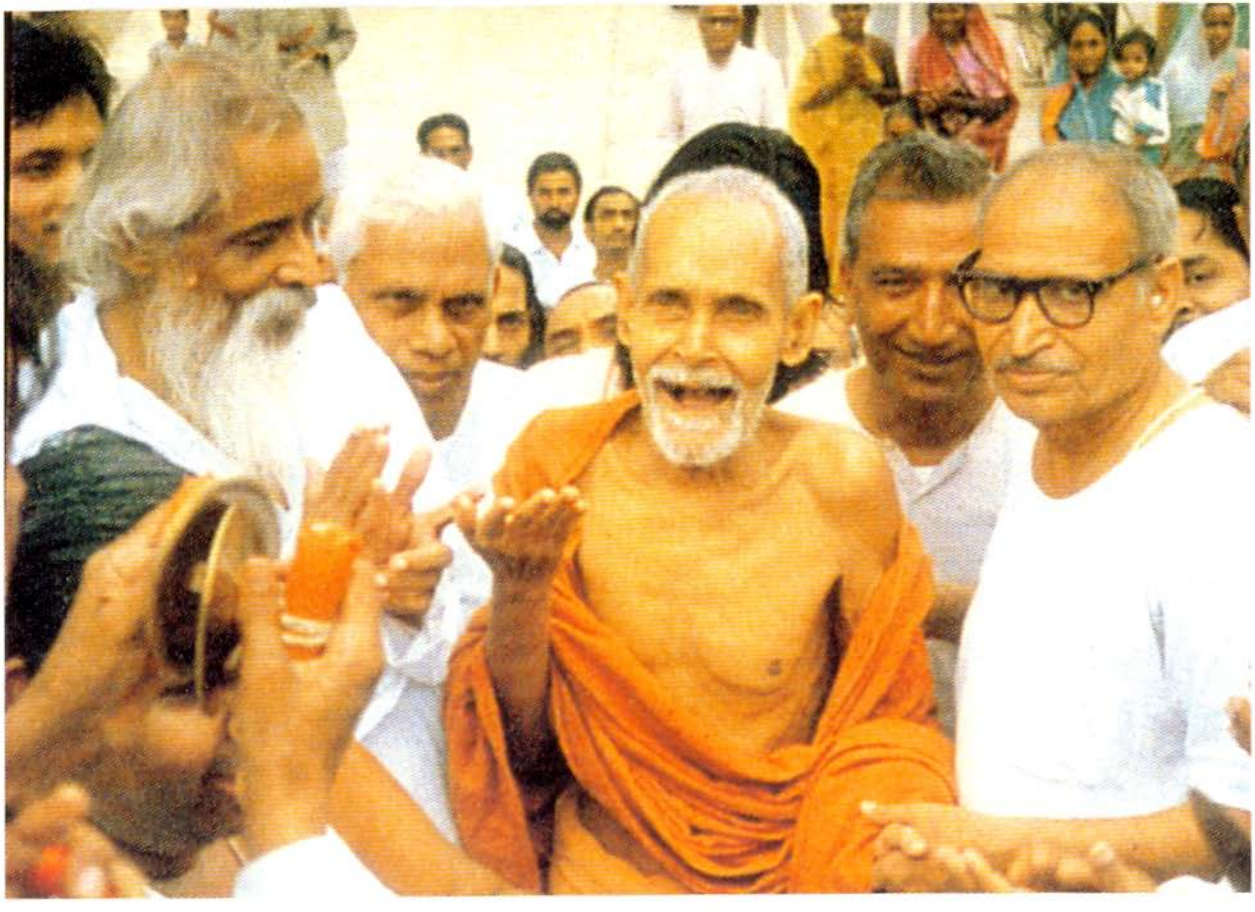

नाम-संकीर्तन की मस्ती में : श्रीबाबा एवं श्रीमहाराजजी

श्रीगिरीराजजी की परिक्रमा

परिक्रमा के मध्य रस का ज्वार

महज्जनों के भावोद्‌गार

श्रीराधा बाबा मणि हैं, प्रकाश हैं, शोभा हैं। श्रीराधा बाबा मेरी आत्मा हैं।

श्रीश्रीयोगीराज ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा

राधा बाबा को अगर कोई एक-एक लक्षणपर परखे तो उनको सौ टंच खरा पाएगा। मुझे अगर एक विशेषणसे ही राधा बाबा को परिभाषित करना हो तो मैं उनको कहूँगा- 'विशुद्ध संत'। तुलसीदासने भी संतके लिये यह विशिष्ट विशेषण शायद एक ही बार प्रयुक्त किया है-

संत विशुद्ध मिलहिं परि तेहि।
राम कृपा करि चितवहिं जेहि।।

राम ने अगर कृपाकर मेरी ओर देखा तो उसका एक मात्र सबूत मेरे लिये यही है कि राधा बाबा मुझे मिले।

कविवर डा. हरिवंश राय 'बच्चन'